बेटों वाली विधवा

प्रेमचंद

(1)

पंडित अयोध्यानाथ का देहान्त हुआ तो सबने कहा, ईश्वर आदमी को ऐसी ही मौत दे। चार जवान बेटे थे, एक लड़की। तीन लड़कों के विवाह हो चुके थे, केवल लड़की कुँवारी थी। सम्पत्ति भी काफी छोड़ी थी। एक पक्का मकान, दो बगीचे, कई हज़ार के गहने और बीस हज़ार नकद। विधवा फूलमती को शोक तो हुआ और कई दिन तक बेहाल पड़ी रही, लेकिन जवान बेटों को सामने देखकर उसे ढाढस हुआ। चारों लड़के एक-से-एक सुशील, बहुएँ एक-से-एक बढ़कर आज्ञाकारिणी। जब वह रात को लेटती, तो चारों बारी-बारी से उसके पांव दबातीं; वह स्नान करके उठती, तो उसकी साड़ी छांटती। सारा घर उसके इशारे पर चलता था। बड़ा लड़का कामता एक दफ्तर में 50 रु. पर नौकर था, छोटा उमानाथ डाक्टरी पास कर चुका था और कहीं औषधालय खोलने की फिक्र में था, तीसरा दयानाथ बी.ए. में फेल हो गया था और पत्रिकाओं में लेख लिखकर कुछ-न-कुछ कमा लेता था, चौथा सीतानाथ चारों में सबसे कुशाग्र बुद्धि और होनहार था और अबकी साल बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास करके एम.ए. की तैयारी में लगा हुआ था। किसी लड़के में वह दुर्व्यसन, वह छैलापन, वह लुटाऊपन न था, जो माता-पिता को जलाता और कुल-मर्यादा को डुबाता है। फूलमती घर की मालकिन थी। गोकि कुंजियाँ बड़ी बहू के पास रहती थीं- बुढ़िया में वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनों को कटु और कलहशील बना दिया करता है; किन्तु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मंगा सकता था।

संध्या हो गई थी। पंडित को मरे आज बारहवाँ दिन था। कल तेरहीं है। ब्रह्मभोज होगा। बिरादरी के लोग निमंत्रित होंगे। उसी की तैयारियाँ हो रही थीं। फूलमती अपनी कोठरी में बैठी देख रही थी, पल्लेदार बोरे में आटा

लाकर रख रहे हैं, घी के टिन आ रहे हैं। शाक-भाजी के टोकरे, शक्कर की बोरियाँ, दही के मटके चले आ रहे हैं। महापात्र के लिए दान की चीजें लाई गई- बर्तन, कपड़े, पलंग, बिछावन, छाते, जूते, छड़ियाँ, लालटेनें आदि; किन्तु फूलमती को कोई चीज नहीं दिखाई गई। नियमानुसार ये सब सामान उसके पास आने चाहिए थे। वह प्रत्येक वस्तु को देखती उसे पसंद करती, उसकी मात्रा में कमी-बेशी का फैसला करती; तब इन चीजों को भंडारे में रखा जाता। क्यों उसे दिखाने और उसकी राय लेने की जरूरत नहीं समझी गई? अच्छा वह आटा तीन ही बोरा क्यों आया? उसने तो पाँच बोरों के लिए कहा था। घी भी पाँच ही कनस्तर है। उसने तो दस कनस्तर मंगवाए थे। इसी तरह शाक-भाजी, शक्कर, दही आदि में भी कमी की गई होगी। किसने उसके हुक्म में हस्तक्षेप किया? जब उसने एक बात तय कर दी, तब किसे उसको घटाने-बढ़ाने का अधिकार है?

आज चालीस वर्षों से घर के प्रत्येक मामले में फूलमती की बात सर्वमान्य थी। उसने सौ कहा तो सौ खर्च किए गए, एक कहा तो एक। किसी ने मीन-मेख न की। यहाँ तक कि पं. अयोध्यानाथ भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न करते थे; पर आज उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से उसके हुक्म की उपेक्षा की जा रही है! इसे वह क्योंकर स्वीकार कर सकती?

कुछ देर तक तो वह जब्त किए बैठी रही; पर अंत में न रहा गया। स्वायत्त शासन उसका स्वभाव हो गया था। वह क्रोध में भरी हुई आयी और कामतानाथ से बोली- क्या आटा तीन ही बोरे लाये? मैंने तो पाँच बोरों के लिए कहा था और घी भी पाँच ही टिन मंगवाया! तुम्हें याद है, मैंने दस कनस्तर कहा था? किफायत को मैं बुरा नहीं समझती; लेकिन जिसने यह कुआँ खोदा, उसी की आत्मा पानी को तरसे, यह कितनी लज्जा की बात है!

कामतानाथ ने क्षमा-याचना न की, अपनी भूल भी स्वीकार न की, लज्जित भी नहीं हुआ। एक मिनट तो विद्रोही भाव से खड़ा रहा, फिर बोला- हम लोगों की सलाह तीन ही बोरों की हुई और तीन बोरे के लिए पाँच टिन घी काफी था। इसी हिसाब से और चीजें भी कम कर दी गई हैं।

फूलमती उग्र होकर बोली- किसकी राय से आटा कम किया गया?

"हम लोगों की राय से।"

"तो मेरी राय कोई चीज नहीं है?"

"है क्यों नहीं; लेकिन अपना हानि-लाभ तो हम समझते हैं?"

फूलमती हक्की-बक्की होकर उसका मुंह ताकने लगी। इस वाक्य का आशय उसकी समझ में न आया। अपना हानि-लाभ! अपने घर में हानि-लाभ की जिम्मेदार वह आप है। दूसरों को, चाहे वे उसके पेट के जन्मे पुत्र ही क्यों न हों, उसके कामों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार? यह लौंडा तो इस ढिठाई से जवाब दे रहा है, मानो घर उसी का है, उसी ने मर-मरकर गृहस्थी जोड़ी है, मैं तो गैर हूँ! ज़रा इसकी हेकड़ी तो देखो।

उसने तमतमाए हुए मुख से कहा, "मेरे हानि-लाभ के जिम्मेदार तुम नहीं हो। मुझे अख्तियार है, जो उचित समझूँ, वह करूँ। अभी जाकर दो बोरे आटा और पाँच टिन घी और लाओ और आगे के लिए खबरदार, जो किसी ने मेरी बात काटी।"

अपने विचार में उसने काफी तम्बीह कर दी थी। शायद इतनी कठोरता अनावश्यक थी। उसे अपनी उग्रता पर खेद हुआ। लड़के ही तो हैं, समझे होंगे कुछ किफायत करनी चाहिए। मुझसे इसलिए न पूछा होगा कि अम्मा तो खुद हरेक काम में किफायत करती हैं। अगर इन्हें मालूम होता कि इस काम में मैं किफायत पसंद न करूंगी, तो कभी इन्हें मेरी उपेक्षा करने का साहस न होता। यद्यपि कामतानाथ अब भी उसी जगह खड़ा था और उसकी भाव-भंगी से ऐसा ज्ञात होता था कि इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह बहुत उत्सुक नहीं, पर फूलमती निश्चिंत होकर अपनी कोठरी में चली गयी। इतनी तम्बीह पर भी किसी को अवज्ञा करने की सामर्थ्य हो सकती है, इसकी संभावना का ध्यान भी उसे न आया।

पर ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उस पर यह हकीकत खुलने लगी कि इस घर में अब उसकी वह हैसियत नहीं रही, जो दस-बारह दिन पहले थी। सम्बंधियों के यहाँ के नेवते में शक्कर, मिठाई, दही, अचार आदि आ रहे थे। बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी-भाव से संभाल-संभालकर रख रही थी। कोई भी उससे पूछने नहीं आता। बिरादरी के लोग जो कुछ पूछते हैं,

कामतानाथ से या बड़ी बहू से। कामतानाथ कहाँ का बड़ा इंतजामकार है, रात-दिन भंग पिये पड़ा रहता है किसी तरह रो-धोकर दफ्तर चला जाता है। उसमें भी महीने में पंद्रह नागों से कम नहीं होते। वह तो कहो, साहब पंडितजी का लिहाज करता है, नहीं अब तक कभी का निकाल देता और बड़ी बहू जैसी फूहड़ औरत भला इन सब बातों को क्या समझेगी! अपने कपड़े-लत्ते तक तो जतन से रख नहीं सकती, चली है गृहस्थी चलाने! भद होगी और क्या। सब मिलकर कुल की नाक कटवाएंगे। वक्त पर कोई-न-कोई चीज़ कम हो जाएगी। इन कामों के लिए बड़ा अनुभव चाहिए। कोई चीज़ तो इतनी बन जाएगी कि मारी-मारी फिरेगी। कोई चीज इतनी कम बनेगी कि किसी पत्तल पर पहुँचेगी, किसी पर नहीं। आखिर इन सबों को हो क्या गया है! अच्छा, बहू तिजोरी क्यों खोल रही है? वह मेरी आज्ञा के बिना तिजोरी खोलने वाली कौन होती है? कुंजी उसके पास है अवश्य; लेकिन जब तक मैं रुपये न निकलवाऊँ, तिजोरी नहीं खुलती। आज तो इस तरह खोल रही है, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। यह मुझसे न बर्दाश्त होगा!

वह झमककर उठी और बहू के पास जाकर कठोर स्वर में बोली- तिजोरी क्यों खोलती हो बहू, मैंने तो खोलने को नहीं कहा?

बड़ी बहू ने निस्संकोच भाव से उत्तर दिया- बाजार से सामान आया है, तो दाम न दिया जाएगा।

"कौन चीज किस भाव में आई है और कितनी आई है, यह मुझे कुछ नहीं मालूम! जब तक हिसाब-किताब न हो जाए, रुपये कैसे दिये जाएँ?"

"हिसाब-किताब सब हो गया है।"

"किसने किया?"

"अब मैं क्या जानूं किसने किया? जाकर मरदों से पूछो! मुझे हुक्म मिला, रुपये लाकर दे दो, रुपये लिये जाती हूँ!"

फूलमती खून का घूंट पीकर रह गई। इस वक्त बिगड़ने का अवसर न था। घर में मेहमान स्त्री-पुरुष भरे हुए थे। अगर इस वक्त उसने लड़कों को डाँटा, तो लोग यही कहेंगे कि इनके घर में पंडितजी के मरते ही फूट पड़ गई। दिल पर पत्थर रखकर फिर अपनी कोठरी में चली गयी। जब मेहमान

विदा हो जाएंगे, तब वह एक-एक की खबर लेगी। तब देखेगी, कौन उसके सामने आता है और क्या कहता है। इनकी सारी चौकड़ी भुला देगी।

किन्तु कोठरी के एकांत में भी वह निश्चिन्त न बैठी थी। सारी परिस्थिति को गिद्ध दृष्टि से देख रही थी, कहाँ सत्कार का कौन-सा नियम भंग होता है, कहाँ मर्यादाओं की उपेक्षा की जाती है। भोज आरम्भ हो गया। सारी बिरादरी एक साथ पंगत में बैठा दी गई। आंगन में मुश्किल से दो सौ आदमी बैठ सकते हैं। ये पाँच सौ आदमी इतनी-सी जगह में कैसे बैठ जाएंगे? क्या आदमी के ऊपर आदमी बिठाए जाएंगे? दो पंगतों में लोग बिठाए जाते तो क्या बुराई हो जाती? यही तो होता है कि बारह बजे की जगह भोज दो बजे समाप्त होता; मगर यहाँ तो सबको सोने की जल्दी पड़ी हुई है। किसी तरह यह बला सिर से टले और चैन से सोएँ! लोग कितने सटकर बैठे हुए हैं कि किसी को हिलने की भी जगह नहीं। पत्तल एक-पर-एक रखे हुए हैं। पूरियाँ ठंडी हो गईं। लोग गरम-गरम मांग रहे हैं। मैदे की पूरियाँ ठंडी होकर चिमड़ी हो जाती हैं। इन्हें कौन खाएगा? रसोइए को कढ़ाव पर से न जाने क्यों उठा दिया गया? यही सब बातें नाक काटने की हैं।

सहसा शोर मचा, तरकारियों में नमक नहीं। बड़ी बहू जल्दी-जल्दी नमक पीसने लगी। फूलमती क्रोध के मारे होठ चबा रही थी, पर इस अवसर पर मुंह न खोल सकती थी। बोरे-भर नमक पिसा और पत्तलों पर डाला गया। इतने में फिर शोर मचा- पानी गरम है, ठंडा पानी लाओ! ठंडे पानी का कोई प्रबन्ध न था, बर्फ भी न मंगाई गई। आदमी बाजार दौड़ाया गया, मगर बाजार में इतनी रात गए बर्फ कहाँ? आदमी खाली हाथ लौट आया। मेहमानों को वही नल का गरम पानी पीना पड़ा। फूलमती का बस चलता, तो लड़कों का मुंह नोच लेती। ऐसी छीछालेदर उसके घर में कभी न हुई थी। उस पर सब मालिक बनने के लिए मरते हैं। बर्फ जैसी जरूरी चीज मंगवाने की भी किसी को सुधि न थी! सुधि कहाँ से रहे- जब किसी को गप लड़ाने से फुर्सत न मिले। मेहमान अपने दिल में क्या कहेंगे कि चले हैं बिरादरी को भोज देने और घर में बर्फ तक नहीं!

अच्छा, फिर यह हलचल क्यों मच गई? अरे, लोग पंगत से उठे जा रहे हैं। क्या मामला है?

फूलमती उदासीन न रह सकी। कोठरी से निकलकर बरामदे में आयी और कामतानाथ से पूछा- क्या बात हो गई लल्ला? लोग उठे क्यों जा रहे हैं? कामता ने कोई जवाब न दिया। वहाँ से खिसक गया। फूलमती झुंझलाकर रह गई। सहसा कहारिन मिल गई। फूलमती ने उससे भी यह प्रश्न किया। मालूम हुआ, किसी के शोरबे में मरी हुई चुहिया निकल आई। फूलमती चित्रलिखित-सी वहीं खड़ी रह गई। भीतर ऐसा उबाल उठा कि दीवार से सिर टकरा ले! अभागे भोज का प्रबन्ध करने चले थे। इस फूहड़पन की कोई हद है, कितने आदमियों का धर्म सत्यानाश हो गया! फिर पंगत क्यों न उठ जाए? आँखों से देखकर अपना धर्म कौन गंवाएगा? हा! सारा किया-धरा मिट्टी में मिल गया। सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया! बदनामी हुई वह अलग।

मेहमान उठ चुके थे। पत्तलों पर खाना ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ था। चारों लड़के आंगन में लज्जित खड़े थे। एक दूसरे को इलज़ाम दे रहे थे। बड़ी बहू अपनी देवरानियों पर बिगड़ रही थी। देवरानियां सारा दोष कुमुद के सिर डालती थी। कुमुद खड़ी रो रही थी। उसी वक्त फूलमती झल्लाई हुई आकर बोली- मुंह में कालिख लगी कि नहीं या अभी कुछ कसर बाकी है? डूब मरो, सब-के-सब जाकर चिल्लू-भर पानी में! शहर में कहीं मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहे।

किसी लड़के ने जवाब न दिया। फूलमती और भी प्रचंड होकर बोली- तुम लोगों को क्या? किसी को शर्म-हया तो है नहीं। आत्मा तो उनकी रो रही है, जिन्होंने अपनी जिन्दगी घर की मरजाद बनाने में खराब कर दी। उनकी पवित्र आत्मा को तुमने यों कलंकित किया? शहर में थुड़ी-थुड़ी हो रही है। अब कोई तुम्हारे द्वार पर पेशाब करने तो आएगा नहीं!

कामतानाथ कुछ देर तक तो चुपचाप खड़ा सुनता रहा। आखिर झुंझला कर बोला- अच्छा, अब चुप रहो अम्मा। भूल हुई, हम सब मानते हैं, बड़ी भंयकर भूल हुई, लेकिन अब क्या उसके लिए घर के प्राणियों को हलाल कर डालोगी? सभी से भूलें होती हैं। आदमी पछताकर रह जाता है। किसी की जान तो नहीं मारी जाती?

बड़ी बहू ने अपनी सफाई दी- हम क्या जानते थे कि बीबी (कुमुद)

से इतना-सा काम भी न होगा। इन्हें चाहिए था कि देखकर तरकारी कढ़ाव में डालतीं। टोकरी उठाकर कढ़ाव में डाल दी! हमारा क्या दोष!

कामतानाथ ने पत्नी को डाँटा- इसमें न कुमुद का कसूर है, न तुम्हारा, न मेरा। संयोग की बात है। बदनामी भाग में लिखी थी, वह हुई। इतने बड़े भोज में एक-एक मुट्ठी तरकारी कढ़ाव में नहीं डाली जाती! टोकरे-के-टोकरे उडेल दिए जाते हैं। कभी-कभी ऐसी दुर्घटना होती है। पर इसमें कैसी जग-हँसाई और कैसी नक-कटाई। तुम खामखाह जले पर नमक छिड़कती हो!

फूलमती ने दांत पीसकर कहा- शरमाते तो नहीं, उलटे और बेहयाई की बातें करते हो।

कामतानाथ ने निःसंकोच होकर कहा- शरमाऊँ क्यों, किसी की चोरी की है? चीनी में चींटे और आटे में घुन, यह नहीं देखे जाते। पहले हमारी निगाह न पड़ी, बस, यहीं बात बिगड़ गई। नहीं, चुपके से चुहिया निकालकर फेंक देते। किसी को खबर भी न होती।

फूलमती ने चकित होकर कहा- क्या कहता है, मरी चुहिया खिलाकर सबका धर्म बिगाड़ देता?

कामता हँसकर बोला- क्या पुराने जमाने की बातें करती हो अम्मा। इन बातों से धर्म नहीं जाता? यह धर्मात्मा लोग जो पत्तल पर से उठ गए हैं, इनमें से कौन है, जो भेड़-बकरी का मांस न खाता हो? तालाब के कछुए और घोंघे तक तो किसी से बचते नहीं। ज़रा-सी चुहिया में क्या रखा था!

फूलमती को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब प्रलय आने में बहुत देर नहीं है। जब पढ़े-लिखे आदमियों के मन में ऐसे अधार्मिक भाव आने लगे, तो फिर धर्म की भगवान ही रक्षा करें। अपना-सा मुंह लेकर चली गयी।

(2)

दो महीने गुजर गए हैं। रात का समय है। चारों भाई दिन के काम से छुट्टी पाकर कमरे में बैठे गप-शप कर रहे हैं। बड़ी बहू भी षड्यंत्र में शरीक हैं। कुमुद के विवाह का प्रश्न छिड़ा हुआ है।

कामतानाथ ने मसनद पर टेक लगाते हुए कहा- दादा की बात दादा के साथ गई। पंडित विद्वान् भी हैं और कुलीन भी होंगे। लेकिन जो आदमी अपनी विद्या और कुलीनता को रुपयों पर बेचे, वह नीच है। ऐसे नीच आदमी के लड़के से हम कुमुद का विवाह सेंत में भी न करेंगे, पाँच हज़ार तो दूर की बात है। उसे बताओ धता और किसी दूसरे वर की तलाश करो। हमारे पास कुल बीस हज़ार ही तो हैं। एक-एक के हिस्से में पाँच-पाँच हज़ार आते हैं। पाँच हज़ार दहेज में दे दें, और पाँच हज़ार नेग-न्योछावर, बाजे-गाजे में उड़ा दें, तो फिर हमारी बधिया ही बैठ जाएगी।

उमानाथ बोले- मुझे अपना औषधालय खोलने के लिए कम-से-कम पाँच हज़ार की ज़रूरत है। मैं अपने हिस्से में से एक पाई भी नहीं दे सकता। फिर खुलते ही आमदनी तो होगी नहीं। कम-से-कम साल-भर घर से खाना पड़ेगा।

दयानाथ एक समाचार-पत्र देख रहे थे। आँखों से ऐनक उतारते हुए बोले- मेरा विचार भी एक पत्र निकालने का है। प्रेस और पत्र में कम-से-कम दस हज़ार का कैपिटल चाहिए। पाँच हज़ार मेरे रहेंगे तो कोई-न-कोई साझेदार भी मिल जाएगा। पत्रों में लेख लिखकर मेरा निर्वाह नहीं हो सकता।

कामतानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा- अज़ी, राम भजो, सेंत में कोई लेख छपता नहीं, रुपये कौन देता है।

दयानाथ ने प्रतिवाद किया- नहीं, यह बात तो नहीं है। मैं तो कहीं भी बिना पेशगी पुरस्कार लिये नहीं लिखता।

कामता ने जैसे अपने शब्द वापस लिये- तुम्हारी बात मैं नहीं कहता भाई। तुम तो थोड़ा-बहुत मार लेते हो, लेकिन सबको तो नहीं मिलता।

बड़ी बहू ने श्रद्धा भाव से कहा- कन्या भाग्यवान् हो तो दरिद्र घर में भी सुखी रह सकती है। अभागी हो, तो राजा के घर में भी रोएगी। यह सब नसीबों का खेल है।

कामतानाथ ने स्त्री की ओर प्रशंसा-भाव से देखा- फिर इसी साल हमें सीता का विवाह भी तो करना है।

सीतानाथ सबसे छोटा था। सिर झुकाए भाइयों की स्वार्थ-भरी बातें सुन-सुनकर कुछ कहने के लिए उतावला हो रहा था। अपना नाम सुनते ही बोला- मेरे विवाह की आप लोग चिन्ता न करें। मैं जब तक किसी धंधे में न लग जाऊंगा, विवाह का नाम भी न लूंगा; और सच पूछिए तो मैं विवाह करना ही नहीं चाहता। देश को इस समय बालकों की जरूरत नहीं, काम करने वालों की जरूरत है। मेरे हिस्से के रुपये आप कुमुद के विवाह में खर्च कर दें। सारी बातें तय हो जाने के बाद यह उचित नहीं है कि पंडित मुरारीलाल से संबंध तोड़ लिया जाए।

उमा ने तीव्र स्वर में कहा- दस हज़ार कहाँ से आएंगे?

सीता ने डरते हुए कहा- मैं तो अपने हिस्से के रुपये देने को कहता हूँ।

"और शेष?"

"मुरारीलाल से कहा जाए कि दहेज में कुछ कमी कर दें। वे इतने स्वार्थान्ध नहीं हैं कि इस अवसर पर कुछ बल खाने को तैयार न हो जाएँ, अगर वह तीन हज़ार में संतुष्ट हो जाएँ तो पाँच हज़ार में विवाह हो सकता है।"

उमा ने कामतानाथ से कहा- सुनते हैं भाई साहब, इसकी बातें।

दयानाथ बोल उठे- तो इसमें आप लोगों का क्या नुकसान है? मुझे तो इस बात से खुशी हो रही है कि भला, हममें कोई तो त्याग करने योग्य है। इन्हें तत्काल रुपये की जरूरत नहीं है। सरकार से वजीफा पाते ही हैं। पास होने पर कहीं-न-कहीं जगह मिल जाएगी। हम लोगों की हालत तो ऐसी नहीं है।

कामतानाथ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया- नुकसान की एक ही कही। हममें से एक को कष्ट हो तो क्या और लोग बैठे देखेंगे? यह अभी लड़के हैं, इन्हें क्या मालूम, समय पर एक रुपया एक लाख का काम करता है। कौन जानता है, कल इन्हें विलायत जाकर पढ़ने के लिए सरकारी वजीफा मिल जाए या सिविल सर्विस में आ जाएँ। उस वक्त सफर की तैयारियों में चार-पाँच हज़ार लग जाएंगे। तब किसके सामने हाथ फैलाते फिरेंगे? मैं यह नहीं चाहता कि दहेज के पीछे इनकी जिन्दगी नष्ट हो जाए।

इस तर्क ने सीतानाथ को भी तोड़ लिया। सकुचाता हुआ बोला- हाँ, यदि ऐसा हुआ तो बेशक मुझे रुपये की ज़रूरत होगी।

"क्या ऐसा होना असंभव है?"

"असभंव तो मैं नहीं समझता; लेकिन कठिन अवश्य है। वजीफे उन्हें मिलते हैं, जिनके पास सिफारिशें होती हैं, मुझे कौन पूछता है।"

"कभी-कभी सिफारिशें धरी रह जाती हैं और बिना सिफारिश वाले बाजी मार ले जाते हैं।"

"तो आप जैसा उचित समझें। मुझे यहाँ तक मंजूर है कि चाहे मैं विलायत न जाऊँ; पर कुमुद अच्छे घर जाए।"

कामतानाथ ने निष्ठा-भाव से कहा- अच्छा घर दहेज देने ही से नहीं मिलता भैया! जैसा तुम्हारी भाभी ने कहा, यह नसीबों का खेल है। मैं तो चाहता हूँ कि मुरारीलाल को जवाब दे दिया जाए और कोई ऐसा घर खोजा जाए, जो थोड़े में राजी हो जाए। इस विवाह में मैं एक हज़ार से ज्यादा नहीं खर्च कर सकता। पंडित दीनदयाल कैसे हैं?

उमा ने प्रसन्न होकर कहा- बहुत अच्छे। एम.ए., बी.ए. न सही, यजमानों से अच्छी आमदनी है।

दयानाथ ने आपत्ति की- अम्मा से भी पूछ तो लेना चाहिए।

कामतानाथ को इसकी कोई जरूरत न मालूम हुई। बोले- उनकी तो जैसे बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई। वही पुराने युग की बातें! मुरारीलाल के नाम पर उधार खाए बैठी हैं। यह नहीं समझतीं कि वह जमाना नहीं रहा। उनको तो बस, कुमुद मुरारी पंडित के घर जाए, चाहे हम लोग तबाह हो जाएँ।

उमा ने एक शंका उपस्थित की- अम्मा अपने सब गहने कुमुद को दे देंगी, देख लीजिएगा।

कामतानाथ का स्वार्थ नीति से विद्रोह न कर सका। बोले- गहनों पर उनका पूरा अधिकार है। यह उनका स्त्रीधन है। जिसे चाहें, दे सकती हैं।

उमा ने कहा- स्त्रीधन है तो क्या वह उसे लुटा देंगी। आखिर वह भी तो दादा ही की कमाई है।

"किसी की कमाई हो। स्त्रीधन पर उनका पूरा अधिकार है!"

"यह कानूनी गोरखधंधे हैं। बीस हज़ार में तो चार हिस्सेदार हों और दस हजार के गहने अम्मा के पास रह जाएँ। देख लेना, इन्हीं के बल पर वह कुमुद का विवाह मुरारी पंडित के घर करेंगी।"

उमानाथ इतनी बड़ी रकम को इतनी आसानी से नहीं छोड़ सकता। वह कपट-नीति में कुशल है। कोई कौशल रचकर माता से सारे गहने ले लेगा। उस वक्त तक कुमुद के विवाह की चर्चा करके फूलमती को भड़काना उचित नहीं। कामतानाथ ने सिर हिलाकर कहा- भाई, मैं इन चालों को पसंद नहीं करता।

उमानाथ ने खिसियाकर कहा- गहने दस हजार से कम के न होंगे।

कामता अविचलित स्वर में बोले- कितने ही के हों; मैं अनीति में हाथ नहीं डालना चाहता।

"तो आप अलग बैठिए। हाँ, बीच में भांजी न मारिएगा।"

"मैं अलग रहूंगा।"

"और तुम सीता?"

"अलग रहूंगा।"

लेकिन जब दयानाथ से यही प्रश्न किया गया, तो वह उमानाथ से सहयोग करने को तैयार हो गया। दस हज़ार में ढ़ाई हज़ार तो उसके होंगे ही। इतनी बड़ी रकम के लिए यदि कुछ कौशल भी करना पड़े तो क्षम्य है।

(3)

फूलमती रात को भोजन करके लेटी थी कि उमा और दया उसके पास जाकर बैठ गए। दोनों ऐसा मुंह बनाए हुए थे, मानो कोई भारी विपत्ति आ पड़ी है। फूलमती ने सशंक होकर पूछा- तुम दोनों घबराए हुए मालूम होते हो?

उमा ने सिर खुजलाते हुए कहा- समाचार-पत्रों में लेख लिखना बड़े जोखिम का काम है अम्मा! कितना ही बचकर लिखो, लेकिन कहीं-न-कहीं पकड़ हो ही जाती है। दयानाथ ने एक लेख लिखा था। उस पर पाँच हज़ार

की जमानत मांगी गई है। अगर कल तक जमा न कर दी गई, तो गिरफ्तार हो जाएंगे और दस साल की सजा ठुक जाएगी।

फूलमती ने सिर पीटकर कहा- ऐसी बातें क्यों लिखते हो बेटा? जानते नहीं हो, आजकल हमारे अदिन आए हुए हैं। जमानत किसी तरह टल नहीं सकती?

दयानाथ ने अपराधी-भाव से उत्तर दिया- मैंने तो अम्मा, ऐसी कोई बात नहीं लिखी थी; लेकिन किस्मत को क्या करूँ। हाकिम जिला इतना कड़ा है कि ज़रा भी रियायत नहीं करता। मैंने जितनी दौड़-धूप हो सकती थी, वह सब कर ली।

"तो तुमने कामता से रुपये का प्रबन्ध करने को नहीं कहा?"

उमा ने मुंह बनाया- उनका स्वभाव तो तुम जानती हो अम्मा, उन्हें रुपये प्राणों से प्यारे हैं। इन्हें चाहे कालापानी ही हो जाए, वह एक पाई न देंगे।

दयानाथ ने समर्थन किया- मैंने तो उनसे इसका ज़िक्र ही नहीं किया।

फूलमती ने चारपाई से उठते हुए कहा- चलो, मैं कहती हूँ, देगा कैसे नहीं? रुपये इसी दिन के लिए होते हैं कि गाड़कर रखने के लिए?

उमानाथ ने माता को रोककर कहा- नहीं अम्मा, उनसे कुछ न कहो। रुपये तो न देंगे, उल्टे और हाय-हाय मचाएंगे। उनको अपनी नौकरी की खैरियत मनानी है, इन्हें घर में रहने भी न देंगे। अफसरों में जाकर खबर दे दें तो आश्चर्य नहीं।

फूलमती ने लाचार होकर कहा- तो फिर जमानत का क्या प्रबन्ध करोगे? मेरे पास तो कुछ नहीं है। हाँ, मेरे गहने हैं, इन्हें ले जाओ, कहीं गिरों रखकर जमानत दे दो और आज से कान पकड़ो कि किसी पत्र में एक शब्द भी न लिखोगे।

दयानाथ कानों पर हाथ रखकर बोला- यह तो नहीं हो सकता अम्मा, कि तुम्हारे जेवर लेकर मैं अपनी जान बचाऊँ। दस-पाँच साल की कैद ही तो होगी, झेल लूंगा। यहीं बैठा-बैठा क्या कर रहा हूँ!

फूलमती छाती पीटते हुए बोली- कैसी बातें मुंह से निकालते हो बेटा, मेरे जीते-जी तम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है! उसका मुंह झुलस दूंगी।

गहने इसी दिन के लिए हैं या और किसी दिन के लिए! जब तुम्हीं न रहोगे, तो गहने लेकर क्या आग में झोकूंगी!

उसने पिटारी लाकर उसके सामने रख दी।

दया ने उमा की ओर जैसे फरियाद की आँखों से देखा और बोला– आपकी क्या राय है भाई साहब? इसी मारे मैं कहता था, अम्मा को बताने की जरूरत नहीं। जेल ही तो हो जाती या और कुछ?

उमा ने जैसे सिफारिश करते हुए कहा– यह कैसे हो सकता था कि इतनी बड़ी वारदात हो जाती और अम्मा को खबर न होती। मुझसे यह नहीं हो सकता था कि सुनकर पेट में डाल लेता; मगर अब करना क्या चाहिए, यह मैं खुद निर्णय नहीं कर सकता। न तो यही अच्छा लगता है कि तुम जेल जाओ और न यही अच्छा लगता है कि अम्मा के गहने गिरों रखे जाएँ।

फूलमती ने व्यथित कंठ से पूछा– क्या तुम समझते हो, मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे हैं? मैं तो प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दूँ, गहनों की बिसात ही क्या है।

दया ने दृढ़ता से कहा– अम्मा, तुम्हारे गहने तो न लूंगा, चाहे मुझ पर कुछ ही क्यों न आ पड़े। जब आज तक तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, तो किस मुंह से तुम्हारे गहने उठा ले जाऊँ? मुझ जैसे कपूत को तो तुम्हारी कोख से जन्म ही न लेना चाहिए था। सदा तुम्हें कष्ट ही देता रहा।

फूलमती ने भी उतनी ही दृढ़ता से कहा– अगर यों न लोगे, तो मैं खुद जाकर इन्हें गिरों रख दूंगी और खुद हाकिम जिला के पास जाकर जमानत जमा कर आऊंगी; अगर इच्छा हो तो यह परीक्षा भी ले लो। आँखें बंद हो जाने के बाद क्या होगा, भगवान् जानें, लेकिन जब तक जीती हूँ तुम्हारी ओर कोई तिरछी आँखों से देख नहीं सकता।

उमानाथ ने मानो माता पर एहसान रखकर कहा– अब तो तुम्हारे लिए कोई रास्ता नहीं रहा दयानाथ। क्या हरज है, ले लो; मगर याद रखो, ज्यों ही हाथ में रुपये आ जाएँ, गहने छुड़ाने पड़ेंगे। सच कहते हैं, मातृत्व दीर्घ तपस्या है। माता के सिवाय इतना स्नेह और कौन कर सकता है? हम बड़े अभागे हैं कि माता के प्रति जितनी श्रद्धा रखनी चाहिए, उसका शतांश भी नहीं रखते।

दोनों ने जैसे बड़े धर्म संकट में पड़कर गहनों की पिटारी संभाली और चलते बने। माता वात्सल्य-भरी आँखों से उनकी ओर देख रही थी और उसकी संपूर्ण आत्मा का आशीर्वाद जैसे उन्हें अपनी गोद में समेट लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। आज कई महीने के बाद उसके भग्न मातृ-हृदय को अपना सर्वस्व अर्पण करके जैसे आनन्द की विभूति मिली। उसकी स्वामिनी कल्पना इसी त्याग के लिए, इसी आत्मसमर्पण के लिए जैसे कोई मार्ग ढूँढती रहती थी। अधिकार या लोभ या ममता की वहाँ गंध तक न थी। त्याग ही उसका आनन्द और त्याग ही उसका अधिकार है। आज अपना खोया हुआ अधिकार पाकर अपनी सिरजी हुई प्रतिमा पर अपने प्राणों की भेंट करके वह निहाल हो गई।

(4)

तीन महीने और गुजर गये। माँ के गहनों पर हाथ साफ करके चारों भाई उसकी दिलजोई करने लगे थे। अपनी स्त्रियों को भी समझाते थे कि उसका दिल न दुखाएँ। अगर थोड़े-से शिष्टाचार से उसकी आत्मा को शांति मिलती है, तो इसमें क्या हानि है। चारों करते अपने मन की, पर माता से सलाह ले लेते या ऐसा जाल फैलाते कि वह सरला उनकी बातों में आ जाती और हरेक काम में सहमत हो जाती। बाग को बेचना उसे बहुत बुरा लगता था; लेकिन चारों ने ऐसी माया रची कि वह उसे बेचने पर राजी हो गई, किन्तु कुमुद के विवाह के विषय में मतैक्य न हो सका। मा. पं. मुरारीलाल पर जमी हुई थी, लड़के दीनदयाल पर अड़े हुए थे। एक दिन आपस में कलह हो गई।

फूलमती ने कहा- माँ-बाप की कमाई में बेटी का हिस्सा भी है। तुम्हें सोलह हज़ार का एक बाग मिला, पच्चीस हज़ार का एक मकान। बीस हज़ार नकद में क्या पाँच हज़ार भी कुमुद का हिस्सा नहीं है?

कामता ने नम्रता से कहा- अम्मा, कुमुद आपकी लड़की है, तो हमारी बहन है। आप दो-चार साल में प्रस्थान कर जाएंगी; पर हमारा और उसका बहुत दिनों तक सम्बन्ध रहेगा। तब हम यथाशक्ति कोई ऐसी बात न करेंगे,

जिससे उसका अमंगल हो; लेकिन हिस्से की बात कहती हो, तो कुमुद का हिस्सा कुछ नहीं। दादा जीवित थे, तब और बात थी। वह उसके विवाह में जितना चाहते, खर्च करते। कोई उनका हाथ न पकड़ सकता था; लेकिन अब तो हमें एक-एक पैसे की किफायत करनी पड़ेगी। जो काम हज़ार में हो जाए, उसके लिए पाँच हज़ार खर्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है?

उमानाथ ने सुधारा- पाँच हज़ार क्यों, दस हज़ार कहिए।

कामता ने भवें सिकोड़कर कहा- नहीं, मैं पाँच हज़ार ही कहूंगा; एक विवाह में पाँच हज़ार खर्च करने की हमारी हैसियत नहीं है।

फूलमती ने जिद् पकड़कर कहा- विवाह तो मुरारीलाल के पुत्र से ही होगा, पाँच हज़ार खर्च हो, चाहे दस हज़ार। मेरे पति की कमाई है। मैंने मर-मरकर जोड़ा है। अपनी इच्छा से खर्च करूंगी। तुम्हीं ने मेरी कोख से नहीं जन्म लिया है। कुमुद भी उसी कोख से आयी है। मेरी आँखों में तुम सब बराबर हो। मैं किसी से कुछ मांगती नहीं। तुम बैठे तमाशा देखो, मैं सब-कुछ कर लूंगी। बीस हज़ार में पाँच हज़ार कुमुद का है।

कामतानाथ को अब कड़वे सत्य की शरण लेने के सिवा और मार्ग न रहा। बोला- अम्मा, तुम बरबस बात बढ़ाती हो। जिन रुपयों को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारे नहीं हैं; तुम हमारी अनुमति के बिना उनमें से कुछ नहीं खर्च कर सकती।

फूलमती को जैसे सर्प ने डस लिया- क्या कहा! फिर तो कहना! मैं अपने ही सँचे रुपये अपनी इच्छा से नहीं खर्च कर सकती?

"वह रुपये तुम्हारे नहीं रहे, हमारे हो गए।"

"तुम्हारे होंगे; लेकिन मेरे मरने के पीछे।"

"नहीं, दादा के मरते ही हमारे हो गए!"

उमानाथ ने बेहयाई से कहा- अम्मा, कानून-कायदा तो जानतीं नहीं, नाहक उछलती हैं।

फूलमती क्रोध-विह्वल रोकर बोली- भाड़ में जाए तुम्हारा कानून। मैं ऐसे कानून को नहीं जानती। तुम्हारे दादा ऐसे कोई धन्ना सेठ नहीं थे। मैंने ही पेट और तन काटकर यह गृहस्थी जोड़ी है, नहीं आज बैठने की छांह

न मिलती! मेरे जीते-जी तुम मेरे रुपये नहीं छू सकते। मैंने तीन भाइयों के विवाह में दस-दस हजार खर्च किए हैं। वही मैं कुमुद के विवाह में भी खर्च करूंगी।

कामतानाथ भी गर्म पड़ा- आपको कुछ भी खर्च करने का अधिकार नहीं है।

उमानाथ ने बड़े भाई को डाँटा- आप खामखाह अम्मा के मुंह लगते हैं भाई साहब! मुरारीलाल को पत्र लिख दीजिए कि तुम्हारे यहाँ कुमुद का विवाह न होगा। बस, छुट्टी हुई। कायदा-कानून तो जानतीं नहीं, व्यर्थ की बहस करती हैं।

फूलमती ने संयमित स्वर में कहा- अच्छा, क्या कानून है, ज़रा मैं भी सुनूँ।

उमा ने निरीह भाव से कहा- कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का है।

फूलमती ने तड़पकर पूछा- किसने यह कानून बनाया है?

उमा शांत स्थिर स्वर में बोला- हमारे ऋषियों ने, महाराज मनु ने, और किसने?

फूलमती एक क्षण अवाक् रहकर आहत कंठ से बोली- तो इस घर में मैं तुम्हारे टुकड़ों पर पड़ी हुई हूँ?

उमानाथ ने न्यायाधीश की निर्ममता से कहा- तुम जैसा समझो।

फूलमती की संपूर्ण आत्मा मानो इस वज्रपात से चीत्कार करने लगी। उसके मुख से जलती हुई चिंगारियों की भांति यह शब्द निकल पड़े- मैंने घर बनवाया, मैंने संपत्ति जोड़ी, मैंने तुम्हें जन्म दिया, पाला और आज मैं इस घर में गैर हूँ? मनु का यही कानून है? और तुम उसी कानून पर चलना चाहते हो? अच्छी बात है। अपना घर-द्वार लो। मुझे तुम्हारी आश्रिता बनकर रहना स्वीकार नहीं। इससे कहीं अच्छा है कि मर जाऊँ। वाह रे अंधेर! मैंने पेड़ लगाया और मैं ही उसकी छांह में नहीं खड़ी हो सकती; अगर यही कानून है, तो इसमें आग लग जाए।

चारों युवक पर माता के इस क्रोध और आतंक का कोई असर न हुआ।

कानून का फौलादी कवच उनकी रक्षा कर रहा था। इन कांटों का उन पर क्या असर हो सकता था?

ज़रा देर में फूलमती उठकर चली गयी। आज जीवन में पहली बार उसका वात्सल्य मग्न मातृत्व अभिशाप बनकर उसे धिक्कारने लगा। जिस मातृत्व को उसने जीवन की विभूति समझा था, जिसके चरणों पर वह सदैव अपनी समस्त अभिलाषाओं और कामनाओं को अर्पित करके अपने को धन्य मानती थी, वही मातृत्व आज उसे अग्निकुंड-सा जान पड़ा, जिसमें उसका जीवन जलकर भस्म हो गया।

संध्या हो गई थी। द्वार पर नीम का वृक्ष सिर झुकाए, निस्तब्ध खड़ा था, मानो संसार की गति पर क्षुब्ध हो रहा हो। अस्ताचल की ओर प्रकाश और जीवन का देवता फूलमती के मातृत्व ही की भांति अपनी चिता में जल रहा था।

(5)

फूलमती अपने कमरे में जाकर लेटी, तो उसे मालूम हुआ, उसकी कमर टूट गई है। पति के मरते ही अपने पेट के लड़के उसके शत्रु हो जाएंगे, उसको स्वप्न में भी अनुमान न था। जिन लड़कों को उसने अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाला, वही आज उसके हृदय पर यों आघात कर रहे हैं! अब वह घर उसे कांटों की सेज हो रहा था। जहाँ उसकी कुछ कद्र नहीं, कुछ गिनती नहीं, वहाँ अनाथों की भांति पड़ी रोटियां खाए, यह उसकी अभिमानी प्रकृति के लिए असह्य था।

पर उपाय ही क्या था? वह लड़कों से अलग होकर रहे भी तो नाक किसकी कटेगी! संसार उसे थूके तो क्या, और लड़कों को थूके तो क्या; बदनामी तो उसी की है। दुनिया यही तो कहेगी कि चार जवान बेटों के होते बुढ़िया अलग पड़ी हुई मजूरी करके पेट पाल रही है! जिन्हें उसने हमेशा नीच समझा, वही उस पर हसेंगे। नहीं, वह अपमान इस अनादर से कहीं ज्यादा हृदय-विदारक था। अब अपना और घर का परदा ढका रखने में ही कुशल है। हाँ, अब उसे अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना

पड़ेगा। समय बदल गया है। अब तक स्वामिनी बनकर रही, अब लौंडी बनकर रहना पड़ेगा। ईश्वर की यही इच्छा है। अपने बेटों की बातें और लातें गैरों की बातों और लातों की अपेक्षा फिर भी गनीमत हैं।

वह बड़ी देर तक मुंह ढांपे अपनी दशा पर रोती रही। सारी रात इसी आत्म-वेदना में कट गई। शरद् का प्रभाव डरता-डरता उषा की गोद से निकला, जैसे कोई कैदी छिपकर जेल से भाग आया हो। फूलमती अपने नियम के विरुद्ध आज तड़के ही उठी, रात-भर में उसका मानसिक परिवर्तन हो चुका था। सारा घर सो रहा था और वह आंगन में झाड़ू लगा रही थी। रात-भर ओस में भीगी हुई उसकी पक्की जमीन उसके नंगे पैरों में कांटों की तरह चुभ रही थी। पंडितजी उसे कभी इतने सवेरे उठने न देते थे। शीत उसके लिए बहुत हानिकारक था। पर अब वह दिन नहीं रहे। प्रकृति उसको भी समय के साथ बदल देने का प्रयत्न कर रही थी। झाड़ू से फुरसत पाकर उसने आग जलायी और चावल-दाल की कंकड़ियाँ चुनने लगी। कुछ देर में लड़के जागे। बहुएँ उठीं। सबों ने बुढ़िया को सर्दी से सिकुड़े हुए काम करते देखा; पर किसी ने यह न कहा कि अम्मा, क्यों हलकान होती हो? शायद सब-के-सब बुढ़िया के इस मान-मर्दन पर प्रसन्न थे।

आज से फूलमती का यही नियम हो गया कि जी तोड़कर घर का काम करना और अंतरंग नीति से अलग रहना। उसके मुख पर जो एक आत्मगौरव झलकता रहता था, उसकी जगह अब गहरी वेदना छायी हुई नजर आती थी। जहाँ बिजली जलती थी, वहाँ अब तेल का दिया टिमटिमा रहा था, जिसे बुझा देने के लिए हवा का एक हलका-सा झोंका काफी है।

मुरारीलाल को इनकारी-पत्र लिखने की बात पक्की हो चुकी थी। दूसरे दिन पत्र लिख दिया गया। दीनदयाल से कुमुद का विवाह निश्चित हो गया। दीनदयाल की उम्र चालीस से कुछ अधिक थी, मर्यादा में भी कुछ हेठे थे, पर रोटी-दाल से खुश थे। बिना किसी ठहराव के विवाह करने पर राजी हो गए। तिथि नियत हुई, बारात आयी, विवाह हुआ और कुमुद बिदा कर दी गई फूलमती के दिल पर क्या गुज़र रही थी, इसे कौन जान सकता है; पर चारों भाई बहुत प्रसन्न थे, मानो उनके हृदय का कांटा निकल गया हो। ऊँचे कुल की कन्या, मुंह कैसे खोलती? भाग्य में सुख भोगना लिखा होगा,

सुख भोगेगी; दुख भोगना लिखा होगा, दुख झेलेगी। हरि-इच्छा बेकसों का अंतिम अवलम्ब है। घर वालों ने जिससे विवाह कर दिया, उसमें हज़ार ऐब हों, तो भी वह उसका उपास्य, उसका स्वामी है। प्रतिरोध उसकी कल्पना से परे था।

फूलमती ने किसी काम में दखल न दिया। कुमुद को क्या दिया गया, मेहमानों का कैसा सत्कार किया गया, किसके यहाँ से नेवते में क्या आया, किसी बात से भी उसे सरोकार न था। उससे कोई सलाह भी ली गई तो यही कहा- बेटा, तुम लोग जो करते हो, अच्छा ही करते हो। मुझसे क्या पूछते हो!

जब कुमुद के लिए द्वार पर डोली आ गई और कुमुद माँ के गले लिपटकर रोने लगी, तो वह बेटी को अपनी कोठरी में ले गयी और जो कुछ सौ पचास रुपये और दो-चार मामूली गहने उसके पास बच रहे थे, बेटी की आँचल में डालकर बोली- बेटी, मेरी तो मन की मन में रह गई, नहीं तो क्या आज तुम्हारा विवाह इस तरह होता और तुम इस तरह विदा की जातीं!

आज तक फूलमती ने अपने गहनों की बात किसी से न कही थी। लड़कों ने उसके साथ जो कपट-व्यवहार किया था, इसे चाहे अब तक न समझी हो, लेकिन इतना जानती थी कि गहने फिर न मिलेंगे और मनोमालिन्य बढ़ने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा; लेकिन इस अवसर पर उसे अपनी सफाई देने की जरूरत मालूम हुई। कुमुद यह भाव मन में लेकर जाए कि अम्मा ने अपने गहने बहुओं के लिए रख छोड़े, इसे वह किसी तरह न सह सकती थी, इसलिए वह उसे अपनी कोठरी में ले गयी थी। लेकिन कुमुद को पहले ही इस कौशल की टोह मिल चुकी थी उसने गहने और रुपये आँचल से निकालकर माता के चरणों में रख दिए और बोली- अम्मा, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद लाखों रुपयों के बराबर है। तुम इन चीजों को अपने पास रखो। न जाने अभी तुम्हें किन विपत्तियों को सामना करना पड़े।

फूलमती कुछ कहना ही चाहती थी कि उमानाथ ने आकर कहा- क्या कर रही है कुमुद? चल, जल्दी कर। साइत टली जाती है। वह लोग हाय-हाय कर रहे हैं, फिर तो दो-चार महीने में आएगी ही, जो कुछ लेना-देना हो, ले लेना।

फूलमती के घाव पर जैसे मानो नमक पड़ गया। बोली- मेरे पास अब क्या है भैया, जो इसे मैं दूंगी? जाओ बेटी, भगवान् तुम्हारा सुहाग अमर करें।

कुमुद विदा हो गई। फूलमती पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जीवन की लालसा नष्ट हो गई।

(6)

एक साल बीत गया।

फूलमती का कमरा घर में सब कमरों से बड़ा और हवादार था। कई महीनों से उसने बड़ी बहू के लिए खाली कर दिया था और खुद एक छोटी-सी कोठरी में रहने लगी, जैसे कोई भिखारिन हो। बेटों और बहुओं से अब उसे ज़रा भी स्नेह न था, वह अब घर की लौंडी थी। घर के किसी प्राणी, किसी वस्तु, किसी प्रसंग से उसे प्रयोजन न था। वह केवल इसलिए जीती थी कि मौत न आती थी। सुख या दुःख का अब उसे लेशमात्र भी ज्ञान न था।

उमानाथ का औषधालय खुला, मित्रों की दावत हुई, नाच-तमाशा हुआ। दयानाथ का प्रेस खुला, फिर जलसा हुआ। सीतानाथ को वजीफा मिला और विलायत गया, फिर उत्सव हुआ। कामतानाथ के बड़े लड़के का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, फिर धूम-धाम हुई; लेकिन फूलमती के मुख पर आनंद की छाया तक न आई! कामताप्रसाद टाइफाइड से महीने-भर बीमार रहा और मरकर उठा। दयानाथ ने अबकी अपने पत्र का प्रचार बढ़ाने के लिए वास्तव में एक आपत्तिजनक लेख लिखा और छः महीने की सजा पायी। उमानाथ ने एक फौजदारी के मामले में रिश्वत लेकर गलत रिपोर्ट लिखी और उसकी सनद छीन ली गई; पर फूलमती के चेहरे पर रंज की परछाईं तक न पड़ी। उसके जीवन में अब कोई आशा, कोई दिलचस्पी, कोई चिन्ता न थी। बस, पशुओं की तरह काम करना और खाना, यही उसकी जिन्दगी के दो काम थे। जानवर मारने से काम करता है; पर खाता है मन से। फूलमती बेकहे काम करती थी; पर खाती थी विष के कौर की तरह। महीनों सिर में तेल न पड़ता, महीनों कपड़े न धुलते, कुछ परवाह नहीं। चेतना शून्य हो गई थी।

सावन की झड़ी लगी हुई थी। मलेरिया फैल रहा था। आकाश में मटियाले बादल थे, जमीन पर मटियाला पानी। आर्द्र वायु शीत-ज्वर और श्वास का वितरणा करती फिरती थी। घर की महरी बीमार पड़ गई। फूलमती ने घर के सारे बरतन मांजे, पानी में भीग-भीगकर सारा काम किया। फिर आग जलायी और चूल्हे पर पतीलियाँ चढ़ा दीं। लड़कों को समय पर भोजन मिलना चाहिए। सहसा उसे याद आया, कामतानाथ नल का पानी नहीं पीते। उसी वर्षा में गंगा जल लाने चली।

कामतानाथ ने पलंग पर लेटे-लेटे कहा- रहने दो अम्मा, मैं पानी भर लाऊंगा, आज महरी खूब बैठ रही।

फूलमती ने मटियाले आकाश की ओर देखकर कहा- तुम भीग जाओगे बेटा, सर्दी हो जाएगी।

कामतानाथ बोले- तुम भी तो भीग रही हो। कहीं बीमार न पड़ जाओ।

फूलमती निर्मम भाव से बोली- मैं बीमार न पड़ूँगी। मुझे भगवान् ने अमर कर दिया है।

उमानाथ भी वहीं बैठा हुआ था। उसके औषधालय में कुछ आमदनी न होती थी, इसलिए बहुत चिन्तित था। भाई-भवाज की मुंहदेखी करता रहता था। बोला- जाने भी दो भैया! बहुत दिनों बहुओं पर राज कर चुकी है, उसका प्रायश्चित्त तो करने दो।

गंगा बढ़ी हुई थी, जैसे समुद्र हो। क्षितिज के सामने के कूल से मिला हुआ था। किनारों के वृक्षों की केवल फुनगियाँ पानी के ऊपर रह गई थीं। घाट ऊपर तक पानी में डूब गए थे। फूलमती कलसा लिये नीचे उतरी, पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पांव फिसला। संभल न सकी। पानी में गिर पड़ी। पल-भर हाथ-पांव चलाये, फिर लहरें उसे नीचे खींच ले गईं। किनारे पर दो-चार पंडे चिल्लाए- "अरे दौड़ो, बुढ़िया डूबी जाती है।" दो-चार आदमी दौड़े भी लेकिन फूलमती लहरों में समा गई थी, उन बलखाती हुई लहरों में, जिन्हें देखकर ही हृदय काँप उठता था।

एक ने पूछा- यह कौन बुढ़िया थी?

"अरे, वही पंडित अयोध्यानाथ की विधवा है।"

"अयोध्यानाथ तो बड़े आदमी थे?"

"हाँ थे तो, पर इसके भाग्य में ठोकर खाना लिखा था।"

"उनके तो कई लड़के बड़े-बड़े हैं और सब कमाते हैं?"

"हाँ, सब हैं भाई; मगर भाग्य भी तो कोई वस्तु है!"

पूस की रात
प्रेमचंद

(1)

हलकू ने आकर स्त्री से कहा- सहना आया है। लाओ, जो रुपए रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली- तीन ही रुपए हैं, दे दोगे तो कम्बल कहाँ से आवेगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर दे देंगें। अभी नहीं।

हलकू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्बल के बिना हार में रात को वह किसी तरह सो नहीं सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला- दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूंगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली- कर चुकें दूसरा उपाय! ज़रा सुनूँ तो कौन-सा उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आयें। मैं रुपए न दूंगी, न दूंगी।

हलकू उदास होकर बोला- तो क्या गाली खाऊँ?

मुन्नी ने तड़पकर कहा- गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौहें ढीली पड़ गई। हलकू

के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भांति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपए निकाले और लाकर हलकू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली- तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी तो खाने को मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर धौंस।

हलकू ने रुपए लिए और इस तरह बाहर चला, मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-काटकर तीन रुपए कम्बल के लिए जमा किए थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

(2)

पूस की अंधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हलकू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुंह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद नहीं आ रही थी।

हलकू ने घुटनियों को गरदन में चिपकाते हुए कहा- क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेटा रह, तो यहाँ क्या लेने आये थे? अब खाओ ठंड, मैं क्या करूँ? जानते थे, मैं यहाँ हलुआ-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलायी और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरे कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हलकू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा- कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह रांड पछुआ न

जाने कहाँ से बरफ लिए आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है! और एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा आए तो गरमी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ-कम्बल। मज़ाल है, जाड़े का गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!

हलकू उठा, गड्ढे में से ज़रा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हलकू ने चिलम पीते हुए कहा- पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ ज़रा, मन बदल जाता है।

जबरा ने उसके मुंह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हलकू- आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूंगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अपने पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिए और उसके मुंह के पास अपना मुंह ले गया। हलकू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हलकू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊंगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भांति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद मे चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद यह समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं है, और हलकू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उनका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छपरी से बाहर आकर भौंकने लगा। हलकू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़-दौड़कर भौंकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भांति ही उछल रहा था।

(3)

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हलकू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई, ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा हो। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है! सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जाएंगे तब कहीं सबेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।

हलकू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग में पत्तियों को ढेर लगा हुआ था। हलकू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देख तो समझे कोई भूत है। कौन जाने, कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठे नहीं रह जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा, पास आया और दुम हिलाने लगा।

हलकू ने कहा- अब तो नहीं रहा जाता जबरू। चलो बगीचे में पत्तियों को बटोरकर तापें। टाटे हो जाएंगे, तो फिर आकर सोएंगें। अभी तो बहुत रात है।

जबरा ने कूँ-कूँ कर सहमति प्रकट की और आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अंधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूंदे टप-टप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेहंदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया।

हलकू ने कहा- कैसी अच्छी महक आई जबरू! तुम्हारी नाक में भी तो सुगंध आ रही है?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। उसे चिंचोड़ रहा था।

हलकू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। ज़रा देर में पत्तियों का ढेर लग गया था। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पांव गले जाते थे और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर संभाले हुए हों। अन्धकार के उस अनंत सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हलकू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली, दोनों पांव फैला दिए, मानो ठंड को ललकार रहा हो, तेरे जी में जो आए सो कर। ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा- क्यों जबरा, अब ठंड नहीं लग रही है?

जबरा ने कूँ-कूँ करके मानो कहा- अब क्या ठंड लगती ही रहेगी?

"पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते।"

जबरा ने पूंछ हिलायी।

"अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा न करूंगा।"

जबरा ने उस अग्नि-राशि की ओर कातर नेत्रों से देखा!

"मुन्नी से कल न कह देना, नहीं लड़ाई करेगी।"

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरों में ज़रा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हलकू ने कहा- चलो-चलो, इसकी सही नहीं! ऊपर से कूदकर आओ। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

(4)

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अंधेरा छा गया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर ज़रा जाग उठती थी, पर एक क्षण में फिर आँखें बन्द कर लेती थी!

हलकू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई थी, पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था।

जबरा जोर से भौंककर खेत की ओर भागा। हलकू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुण्ड खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुण्ड था। उनके कूदने-दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वे खेत में चर रहीं हैं। उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा- नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ!

उसने जोर से आवाज लगायी- जबरा, जबरा।

जबरा भौंकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था। इस जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असह्य जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगायी- लिहो-लिहो! लिहो!!

जबरा फिर भौंक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते हैं।

हलकू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला, पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक का-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़ डालता था, नील गाय खेत का सफाया किए डालती थीं और हलकू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भांति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सबेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गई थी और मुन्नी कह रही थी- क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हलकू न उठकर कहा- क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली- हाँ, सारे खेत का सत्यनाश हो गया। भला, ऐसा भी कोई सोता है। तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ?

हलकू ने बहाना किया- मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ, ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ!

दोनों फिर खेत के डांड पर आये। देखा सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है और जबरा मड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हों। दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी, पर हलकू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा- अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हलकू ने प्रसन्न मुख से कहा- रात को ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।

दो बहनें
प्रेमचंद

(1)

दोनों बहनें दो साल के बाद एक तीसरे नातेदार के घर मिलीं और खूब रो-धोकर खुश हुई तो बड़ी बहन रूपकुमारी ने देखा कि छोटी बहन रामदुलारी सिर से पाँव तक गहनों से लदी हुई है, कुछ उसका रंग खुल गया है, स्वभाव में कुछ गरिमा आ गयी है और बातचीत करने में ज्यादा चतुर हो गयी है। कीमती बनारसी साड़ी और बेलदार उन्नावी मखमल के जम्पर ने उसके रूप को और भी चमका दिया- वही रामदुलारी, लड़कपन में सिर के बाल खोले, फूहड़-सी इधर-उधर खेला करती थी। अन्तिम बार रूपकुमारी ने उसे उसके विवाह में देखा था, दो साल पहले। तब भी उसकी शक्ल-सूरत में कुछ ज्यादा अन्तर न हुआ था। लम्बी तो हो गयी थी, मगर थी उतनी ही दुबली, उतनी ही फूहड़, उतनी ही मन्दबुद्धि। जरा-जरा सी बात पर रूठने वाली, मगर आज तो कुछ हालत ही और थी, जैसे कली खिल गयी हो और यह रूप इसने छिपा कहाँ रखा था? नहीं, आँखों को धोखा हो रहा है। यह रूप नहीं केवल आँखों को लुभाने की शक्ति है, रेशम और मखमल और सोने के बल पर वह रूप-रेखा थोड़े ही बदल जाएगी। फिर भी आँखों में समाई जाती है। पचासों स्त्रियाँ जमा हैं, मगर यह आकर्षण, यह जादू और किसी में नहीं।

कहीं आईना मिलता तो वह जरा अपनी सूरत भी देखती। घर से चलते समय उसने आईना देखा था। अपने रूप को चमकाने के लिए जितना सान चढ़ा सकती थी, उससे कुछ अधिक ही चढ़ाया था। लेकिन अब वह सूरत जैसे स्मृति से मिट गयी है, उसकी धुंधली-सी परछाई भर हृदय-पट पर है। उसे फिर से देखने के लिए वह बेकरार हो रही है। वह अब तुलनात्मक दृष्टि से देखेगी, रामदुलारी में यह आकर्षण कहाँ से आया, इस रहस्य का पता लगाएगी। यों उसके पास मेकअप की सामग्रियों के साथ छोटा-सा

आईना भी है, लेकिन भीड़-भाड़ में वह आईना देखने या बनाव-सिंगार की आदी नहीं है। ये औरतें दिल में न जाने क्या समझें। मगर यहाँ कोई आईना तो होगा ही। ड्राइंग-रूम में जरूर ही होगा। वह उठकर ड्राइंग-रूम में गयी और कद-ए-आदम शीशे में अपनी सूरत देखी। वहाँ इस वक्त और कोई न था। मर्द बाहर सहन में थे, औरतें गाने-बजाने में लगी हुई थीं। उसने आलोचनात्मक दृष्टि से एक-एक अंग को, अंगों के एक-एक विन्यास को देखा। उसका अंग-विन्यास, उसकी मुख-छवि निष्कलंक है। मगर वह ताजगी, वह मादकता, वह माधुर्य नहीं है। हाँ, नहीं है। वह अपने को धोखे में नहीं डाल सकती। कारण क्या है? यही कि रामदुलारी आज खिली है, उसे खिले जमाना हो गया। लेकिन इस खयाल से उसका चित्त शान्त नहीं होता। वह रामदुलारी से हेठी बनकर नहीं रह सकती। ये पुरुष भी कितने गावदी होते हैं। किसी में भी सच्चे सौन्दर्य की परख नहीं। इन्हें तो जवानी और चंचलता और हाव-भाव चाहिए। आँखें रखकर भी अन्धे बनते हैं। भला इन बातों का आपसे क्या सम्बन्ध! ये तो उम्र के तमाशे हैं। असली रूप तो वह है, जो समय की परवाह न करे। उसके कपड़ों में रामदुलारी को खड़ा कर दो, फिर देखो, यह सारा जादू कहाँ उड़ जाता है। चुड़ैल-सी नजर आये। मगर इन अन्धों को कौन समझाये। मगर रामदुलारी के घरवाले तो इतने सम्पन्न न थे। विवाह में जो जोड़े और गहने आये थे, वे तो बहुत ही निराशाजनक थे। खुशहाली का दूसरा कोई सामान भी न था। इसके ससुर एक रियासत के मुख्तारआम थे, और दूल्हा कॉलेज में पढ़ता था। इस दो साल में कहाँ से यह हुन बरस गया। कौन जाने, गहने कहीं से मांग लायी हो। कपड़े भी मांगे हो सकते हैं। कुछ औरतों को अपनी हैसियत बढ़ाकर दिखाने की लत होती है। तो वह स्वांग रामदुलारी को मुबारक रहे। मैं जैसी हूँ, वैसी अच्छी हूँ। प्रदर्शन का यह रोग कितना बढ़ता जाता है। घर में रोटियों का ठिकाना नहीं है, मर्द 25-30 रुपये पर कलम घिस रहा है; लेकिन देवीजी घर से निकलेंगी तो इस तरह बन-ठनकर, मानो कहीं की राजकुमारी हैं। बिसातियों के और दरजियों के तकाजे सहेंगी, बजाज के सामने हाथ जोड़ेंगी, शौहर की घुड़कियाँ खाएंगी, रोएंगी, रूठेंगी, मगर प्रदर्शन के उन्माद को नहीं रोकतीं। घर वाले भी सोचते होंगे, कितनी

छिछोरी तबियत है इसकी! मगर यहाँ तो देवीजी ने बेहयाई पर कमर बाँध ली है। कोई कितना ही हँसे, बेहया की बला दूर। उन्हें तो बस यही धुन सवार है कि जिधर से निकल जाएँ, उधर लोग हृदय पर हाथ रखकर रह जाएँ। रामदुलारी ने जरूर किसी से गहने और जेवर मांग लिये बेशर्म जो है!

उसके चेहरे पर आत्म-सम्मान की लाली दौड़ गयी। न सही उसके पास जेवर और कपड़े। उसे किसी के सामने लज्जित तो नहीं होना पड़ता! किसी से मुंह तो नहीं चुराना पड़ता। एक-एक लाख के तो उसके दो लड़के हैं। भगवान् उन्हें चिरायु करे, वह इसी में खुश है। खुद अच्छा पहन लेने और अच्छा खा लेने से जीवन का उद्देश्य नहीं पूरा हो जाता। उसके घरवाले गरीब हैं, पर उनकी इज्जत तो है, किसी का गला तो नहीं दबाते, किसी का शाप तो नहीं लेते!

इस तरह अपने मन को ढाढस देकर वह फिर बरामदे में आयी, तो रामदुलारी ने जैसे उसे दया की आँखों से देखकर कहा- जीजाजी की कुछ तरक्की-वरक्की हुई कि नहीं बहन! या अभी तक वही 75 रुपये पर कलम घिस रहे हैं?

रूपकुमारी की देह में आग-सी लग गयी। ओफ्फोह रे दिमाग! मानो इसका पति लाट ही तो है। अकड़कर बोली- तरक्की क्यों नहीं हुई। अब सौ के ग्रेड में हैं। आजकल यह भी गनीमत है, नहीं अच्छे-अच्छे एम.ए. पासों को देखती हूँ कि कोई टके को नहीं पूछता। तेरा शौहर तो अब बी.ए. में होगा?

रामदुलारी ने नाक सिकोड़कर कहा- उन्होंने तो पढ़ना छोड़ दिया बहन, पढ़कर औकात खराब करना था और क्या। एक कम्पनी के एजेण्ट हो गये हैं। अब ढाई सौ रुपये माहवार पाते हैं। कमीशन ऊपर से। पाँच रुपये रोज सफर-खर्च के भी मिलते हैं। यह समझ लो कि पाँच सौ का औसत पड़ जाता है। डेढ़ सौ माहवार तो उनका निजी खर्च है बहन! ऊँचे ओहदे के लिए अच्छी हैसियत भी तो चाहिए। साढ़े तीन सौ बेदाग घर दे देते हैं। उसमें से सौ रुपये मुझे मिलते हैं, ढाई सौ में घर का खर्च खुशफैली से चल जाता है। एम.ए. पास करके क्या करते!

रूपकुमारी इस कथन को शेखचिल्ली की दास्तान से ज्यादा महत्व नहीं देना चाहती, मगर रामदुलारी के लहजे में इतनी विश्वासोत्पादकता है कि वह अपनी निम्न चेतना में उससे प्रभावित हो रही है और उसके मुख पर पराजय की खिन्नता साफ झलक रही है। मगर यदि उसे बिलकुल पागल नहीं हो जाना है तो इस ज्वाला को हृदय से निकाल देना पड़ेगा। जिरह करके अपने मन को विश्वास दिलाना पड़ेगा कि इसके काव्य में एक चौथाई से ज्यादा सत्य नहीं है। एक चौथाई तक वह सह सकती है। इससे ज्यादा उससे न सहा जाएगा। इसके साथ ही उसके दिल में धड़कन भी है कि कहीं यह कथा सत्य निकली तो वह रामदुलारी को कैसे मुंह दिखाएगी। उसे भय है कि कहीं उसकी आँखों से आँसू न निकल पड़ें। कहाँ पछत्तर और कहाँ पाँच सौ! इतनी बड़ी रकम आत्मा की हत्या करके भी क्यों न मिले, फिर भी रूपकुमारी के लिए असह्य है। आत्मा का मूल्य अधिक से अधिक सौ रुपये हो सकता है। पाँच सौ किसी हालत में भी नहीं।

उसने परिहास के भाव से पूछा- जब एजेण्टी में इतना वेतन और भत्ता मिलता है तो ये सारे कॉलेज बन्द क्यों नहीं हो जाते? हजारों लड़के क्यों अपनी जिन्दगी खराब करते हैं?

रामदुलारी बहन के खिसियानेपन का आनन्द उठाती हुई बोली- बहन, तुम यहाँ भूल कर रही हो। एम.ए. तो सभी पास हो सकते हैं, मगर एजेण्टी बिरले ही किसी को आती है। यह तो ईश्वर की देन है। कोई जिन्दगी-भर पढ़ता रहे, मगर यह जरूरी नहीं कि वह अच्छा एजेण्ट भी हो जाए। रुपये पैदा करना दूसरी बात है। आलिम-फाजिल हो जाना दूसरी बात। अपने माल की श्रेष्ठता का विश्वास पैदा कर देना, यह दिल में जमा देना कि इससे सस्ता और टिकाऊ माल बाजार में मिल ही नहीं सकता, आसान काम नहीं है एक-से-एक घाघों से उनका साबका पड़ता है। बड़े-बड़े राजाओं और रईसों का मत फेरना पड़ता है, तब जाके कहीं माल बिकता है। मामूली आदमी तो राजाओं और नवाबों के सामने ही न जा सके। पहुँच ही न हो। और किसी तरह पहुँच भी जाय तो जबान न खुले। पहले-पहले तो इन्हें भी झिझक हुई थी, मगर अब तो इस सागर के मगर हैं। अगले साल तरक्की होने वाली है।

रूपकुमारी की धमनियों में रक्त की गति जैसे बन्द हुई जा रही है। निर्दयी आकाश गिर क्यों नहीं पड़ता! पाषाण-हृदया धरती फट क्यों नहीं जाती! यह कहाँ का न्याय है कि रूपकुमारी जो रूपवती है, तमीजदार है, सुघड़ है, पति पर जान देती है, बच्चों को प्राणों से ज्यादा चाहती है, थोड़े में गृहस्थी को इतने अच्छे ढंग से चलाती है, उसकी तो यह दुर्गति, और यह घमण्डिन, बदतमीज, विलासिनी, चंचल, मुंहफट छोकरी, जो अभी तक सिर खोले घूमा करती थी, रानी बन जाए? मगर उसे अब भी कुछ आशा बाकी थी। शायद आगे चलकर उसके चित्त की शान्ति का कोई मार्ग निकल आये।

उसी परिहास के स्वर में बोली- तब तो शायद एक हजार मिलने लगें?

'एक हजार तो नहीं, पर छः सौ में सन्देह नहीं?'

'कोई आँखों का अन्धा मालिक फँस गया होगा?'

व्यापारी आँखों के अन्धे नहीं होते दीदी! उनकी आँखें हमारी-तुम्हारी आँखों से कहीं तेज होती हैं। जब तुम उन्हें छः हजार कमाकर दो, तब कहीं छः सौ मिलें। जो सारी दुनिया को चराये उसे कौन बेवकूफ बनाएगा।'

परिहास से काम न चलते देखकर रूपकुमारी ने अपमान का अस्त्र निकाला- मैं तो इसे बहुत अच्छा पेशा नहीं समझती। सारे दिन झूठ के तूमार बाँधो। यह तो ठग-विद्या है!

रामदुलारी जोर से हँसी। बहन पर उसने पूरी विजय पायी थी।

'इस तरह तो जितने वकील-बैरिस्टर हैं; सभी ठग-विद्या करते हैं। अपने मुवक्किल के फायदे के लिए उन्हें क्या नहीं करना पड़ता? झूठी शहादतें तक बनानी पड़ती हैं। मगर उन्हीं वकीलों और बैरिस्टरों को हम अपना लीडर कहते हैं, उन्हें अपनी कौमी सभाओं का प्रधान बनाते हैं, उनकी गाडियाँ खींचते हैं, उन पर फूलों और अशर्फियों की वर्षा करते हैं, उनके नाम से सड़कें, प्रतिमाएँ और संस्थाएँ बनाते हैं। आजकल दुनिया पैसा देखती है। आजकल ही क्यों? हमेशा से धन की यही महिमा रही है। पैसे कैसे आएँ, यह कोई नहीं देखता। जो पैसे वाला है, उसी की पूजा होती है। जो अभागे हैं, अयोग्य हैं, या भीरु हैं, वे आत्मा और सदाचार की दुहाई देकर अपने आँसू पोंछते हैं। नहीं, आत्मा और सदाचार को कौन पूछता है।'

रूपकुमारी खामोश हो गयी। अब उसे यह सत्य उसकी सारी वेदनाओं के साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि रामदुलारी सबसे ज्यादा भाग्यवान है। इससे अब त्राण नहीं। परिहास या अनादर से वह अपनी तंगदिली का प्रमाण देने के सिवा और क्या पाएगी। उसे किसी बहाने से रामदुलारी के घर जाकर असलियत की छान-बीन करनी पड़ेगी। अगर रामदुलारी वास्तव में लक्ष्मी का वरदान पा गयी है तो रूपकुमारी अपनी किस्मत ठोंककर बैठी रहेगी। समझ लेगी कि दुनिया में कहीं न्याय नहीं है, कहीं ईमानदारी की पूछ नहीं है।

मगर क्या सचमुच उसे इस विचार से सन्तोष होगा? यहाँ कौन ईमानदार है? वही, जिसे बेईमानी करने का अवसर नहीं है और न इतनी बुद्धि या मनोबल है कि वह अवसर पैदा कर ले। उसके पति 75 रुपये पाते हैं; पर क्या दस-बीस रुपये और ऊपर से मिल जाएँ तो वह खुश होकर ले न लेंगे? उनकी ईमानदारी और सत्यवादिता उसी समय तक है, जब तक अवसर नहीं मिलता। जिस दिन मौका मिला, सारी सत्यवादिता धरी रह जाएगी। और क्या रूपकुमारी में इतना नैतिक बल है कि वह अपने पति को हराम का माल हजम करने से रोक दे? रोकना तो दूर की बात है, वह प्रसन्न होगी, शायद पतिदेव की पीठ ठोकेगी। अभी उनके दफ्तर से आने के समय वह मन मारे बैठी रहती है। तब वह द्वार पर खड़ी होकर उनकी बाट जोहेगी, और ज्योंही वह घर में आएंगे, उनकी जेबों की तलाशी लेगी।

आंगन में गाना-बजाना हो रहा था। रामदुलारी उमंग के साथ गा रही थी, और रूपकुमारी वहीं बरामदे में उदास बैठी हुई थी। न जाने क्यों उसके सिर में दर्द होने लगा था। कोई गाये, कोई नाचे, उससे प्रयोजन नहीं। वह तो अभागिन है। रोने के लिए पैदा की गयी है।

नौ बजे रात को मेहमान रुखसत होने लगे। रूपकुमारी भी उठी। एक्का मंगवाने जा रही थी कि रामदुलारी ने कहा- एक्का मंगवाकर क्या करोगी बहन, मुझे लेने के लिए कार आती होगी; चलो दो-चार दिन मेरे यहाँ रहो, फिर चली जाना। मैं जीजाजी को कहला भेजूंगी तुम्हारा इन्तजार न करें।

रूपकुमारी का यह अन्तिम अस्त्र भी बेकार हो गया। रामदुलारी के घर जाकर हालचाल की टोल लेने की इच्छा गायब हो गयी। वह अब अपने

घर जाएगी और मुंह ढाँपकर पड़ी रहेगी। इन फटेहालों में क्यों किसी के घर जाए। बोली- नहीं, अभी तो मुझे फुरसत नहीं है, बच्चे घबरा रहे होंगे। फिर कभी आऊंगी।

'क्या रात-भर भी न ठहरोगी?'

'नहीं।'

'अच्छा बताओ, कब आओगी? मैं सवारी भेज दूंगी।'

'मैं खुद कहला भेजूंगी।'

'तुम्हें याद न रहेगी। साल-भर हो गया, भूलकर भी याद न किया। मैं इसी इन्तजार में थी कि दीदी बुलावें तो चलूँ। एक ही शहर में रहते हैं, फिर भी इतनी दूर कि साल-भर गुजर जाए और मुलाकात तक न हो।'

रूपकुमारी इसके सिवा और क्या कहे कि घर के कामों से छुट्टी नहीं मिलती। कई बार उसने इरादा किया कि दुलारी को बुलाये, मगर अवसर ही न मिला।

सहसा रामदुलारी के पति मि. गुरुसेवक ने आकर बड़ी साली को सलाम किया। बिलकुल अंग्रेजी सज-धज, मुंह में चुरुट, कलाई पर सोने की घड़ी, आँखों पर सुनहरी ऐनक, जैसे कोई सिविलियन हो। चेहरे से जेहानत और शराफत बरस रही थी। वह इतना रूपवान् और सजीला है, रूपकुमारी को अनुमान न था। कपड़े जैसे उसकी देह पर खिल रहे थे।

आशीर्वाद देकर बोली- आज यहाँ न आती तो मुझसे मुलाकात क्यों होती!

गुरुसेवक हँसकर बोला- यह उलटी शिकायत! क्यों न हो। कभी आपने बुलाया और मैं न गया?

'मैं नहीं जानती थी कि तुम अपने को मेहमान समझते हो। वह भी तो तुम्हारा ही घर है।'

रामदुलारी देख रही थी कि मन में उससे ईर्ष्या रखते हुए भी वह कितनी वाणी-मधुर, कितनी स्निग्ध, कितनी अनुग्रह-प्रार्थिनी होती जा रही है।

गुरुसेवक ने उदार मन से कहा- हाँ, अब मान गया भाभी साहब, बेशक मेरी गलती है। इस दृष्टि से मैंने विचार नहीं किया था। मगर आज तो मेरे घर रहिए।

'नहीं आज बिलकुल अवकाश नहीं है। फिर कभी आऊंगी। लड़के घबरा रहे होंगे।'

रामदुलारी बोली- मैं कितना कहके हार गयी, मानती ही नहीं।

दोनों बहनें कार की पिछली सीट पर बैठीं। गुरुसेवक ड्राइव करता हुआ चला। जरा देर में उसका मकान आ गया। रामदुलारी ने फिर बहन से उतरने के लिए आग्रह किया, पर वह न मानी। लड़के घबरा रहे होंगे। आखिर रामदुलारी उससे गले मिलकर अन्दर चली गयी। गुरुसेवक ने कार बढ़ायी। रूपकुमारी ने उड़ती हुई निगाह से रामदुलारी का मकान देखा और वह ठोस सत्य एक शलाका की भांति उसके कलेजे में चुभ गया।

कुछ दूर जाकर गुरुसेवक बोला- भाभी, मैंने तो अपने लिए अच्छा रास्ता निकाल लिया। अगर दो-चार साल इसी तरह काम करता रहा तो आदमी बन जाऊँगा।

रूपकुमारी ने सहानुभूति के साथ कहा- रामदुलारी ने मुझसे बताया था। भगवान् करे, जहाँ रहो, खुश रहो। मगर जरा हाथ-पैर संभाल के रहना।

'मैं मालिक की आँख बचाकर एक पैसा भी लेना पाप समझता हूँ, भाभी। दौलत का मजा तो तभी है कि ईमान सलामत रहे। ईमान खोकर पैसे मिले तो क्या! मैं ऐसी दौलत को त्याज्य समझता हूँ, और आँख किसकी बचाऊँ। सब सियाह-सफेद तो मेरे हाथ में है। मालिक तो रहा नहीं, केवल उसकी बेवा है। उसने सब कुछ मेरे हाथ में छोड़ रखा है। मैंने उसका कारोबार संभाल न लिया होता तो सब कुछ चौपट हो जाता। मेरे सामने तो मालिक सिर्फ तीन महीने जिन्दा रहे। मगर आदमी को परखना खूब जानते थे। मुझे 100 रुपये पर रखा और एक महीने में 200 रुपये कर दिया। आप लोगों की दुआ से पहले ही महीने में मैंने बारह हजार का काम किया।'

'क्या काम करना पड़ता है?' रूपकुमारी ने बिना किसी उद्देश्य के पूछा।

'वही मशीनों की एजेण्टी' तरह-तरह की मशीनें मंगाना और बेचना।- ठण्डा जवाब था।

रूपकुमारी का मनहूस घर आ गया। द्वार पर एक लालटेन टिमटिमा रही थी। उसके पति उमानाथ द्वार पर टहल रहे थे। मगर रूपकुमारी ने गुरुसेवक

से उतरने के लिए आग्रह नहीं किया। एक बार शिष्टाचार के नाते कहा जरूर पर जोर नहीं दिया, और उमानाथ तो गुरुसेवक से मुखातिब भी न हुए।

रूपकुमारी को वह घर अब कब्रिस्तान-सा लग रहा था, जैसे फूटा हुआ भाग्य हो। न कहीं फर्श, न फर्नीचर, न गमले। दो-चार टूटी-टाटी तिपाइयाँ, एक लंगड़ी मेज, चार-पाँच पुरानी-पुरानी खाटें, यही उस घर की बिसात थी। आज सुबह तक रूपकुमारी इसी घर में खुश थी। लेकिन अब यह घर उसे काटे खा रहा है। लड़के अम्मा-अम्मा करके दौड़े, मगर उसने दोनों को झिड़क दिया। उसके सिर में दर्द है, वह किसी से न बोलेगी, कोई उसे न छेड़े। अभी घर में खाना नहीं पका। पकाता कौन? लडकों ने तो दूध पी लिया है, किन्तु उमानाथ ने कुछ नहीं खाया। इसी इन्तजार में थे कि रूपकुमारी आये तो पकाये। पर रूपकुमारी के सिर में दर्द है। मजबूर होकर बाजार से पूरियाँ लानी पड़ेंगी।

रूपकुमारी ने तिरस्कार के स्वर में कहा- तुम अब तक मेरा इन्तजार क्यों करते रहे? मैंने तो खाना पकाने की नौकरी नहीं लिखायी है, और जो रात को वहीं रह जाती? आखिर तुम कोई महराजिन क्यों नहीं रख लेते? क्या जिन्दगी भर मुझी को पीसते रहोगे?

उमानाथ ने उसकी तरफ आहत विस्मय की आँखों से देखा। उसके बिगड़ने का कोई कारण उनकी समझ में न आया। रूपकुमारी से उन्होंने हमेशा निरापद सहयोग पाया है, निरापद ही नहीं, सहानुभूतिपूर्ण भी। उन्होंने कई बार उससे महराजिन रख लेने का प्रस्ताव खुद किया था, पर उसने बराबर यही जवाब दिया कि आखिर में बैठे-बैठे क्या करूँगी? चार-पाँच रुपये का खर्च बढ़ाने से क्या फायदा? यह पैसे तो बच्चों के मक्खन में खर्च होते हैं।

और आज वह इतनी निर्ममता से उलाहना दे रही है, जैसे गुस्से में भरी हो।

अपनी सफाई देते हुए बोले- महराजिन रखने के लिए तो मैंने खुद तुमसे कई बार कहा।

'तो लाकर रख क्यों न दिया? मैं उसे निकाल देती तो कहते!'

'हाँ यह गलती हुई।'

'तुमने कभी सच्चे दिल से नहीं कहा', रूपकुमारी ने और भी प्रचण्ड होकर कहा– 'तुमने केवल मेरा मन लेने के लिए कहा। मैं ऐसी भोली नहीं हूँ कि तुम्हारे मन का रहस्य न समझूँ। तुम्हारे दिल में कभी मेरे आराम का विचार आया ही नहीं। तुम तो खुश थे कि अच्छी लौंडी मिल गयी है। एक रोटी खाती है और चुपचाप पड़ी रहती है। महज खाने और कपड़े पर। यह भी जब घर की जरूरतों से बचे। पचहत्तर रुपल्लियाँ लाकर मेरे हाथ पर रख देते हो और सारी दुनिया का खर्च। मेरा दिल ही जानता है, मुझे कितनी कतर-व्योंत करनी पड़ती है। क्या पहनूँ और क्या ओढ़ूँ! तुम्हारे साथ जिन्दगी खराब हो गयी! संसार में ऐसे मर्द भी हैं, जो स्त्री के लिए आसमान के तारे तोड़ लाते हैं। गुरुसेवक ही को देखो, दूर क्यों जाओ। तुमसे कम पढ़ा है, उम्र में तुमसे कहीं कम है, मगर पाँच सौ का महीना लाता है, और रामदुलारी रानी बनी बैठी रहती है। तुम्हारे लिए यही 75 रुपये बहुत हैं। राँड़ माँड़ में ही मगन! तुम नाहक मर्द हुए, तुम्हें तो औरत होना चाहिए था। औरतों के दिल में कैसे-कैसे अरमान होते हैं। मगर मैं तो तुम्हारे लिए घर की मुर्गी का बासी साग हूँ। तुम्हें तो कोई तकलीफ होती नहीं। तुम्हें तो कपड़े भी अच्छे चाहिए, खाना भी अच्छा चाहिए, क्योंकि पुरुष हो, बाहर से कमाकर लाते हो। मैं चाहे जैसे रहूँ तुम्हारी बला से।'

वाग्बाणों का यह सिलसिला कई मिनट तक जारी रहा, और उमानाथ चुपचाप सुनते रहे। अपनी जान में उन्होंने रूपकुमारी को शिकायत का कभी मौका नहीं दिया। उनका वेतन कम है, यह सत्य है, पर यह उनके बस की बात तो नहीं। वह दिल लगाकर अपना काम करते हैं, अफसरों को खुश रखने की सदैव चेष्टा करते हैं इसी साल बड़े बाबू के छोटे सुपुत्र को छः महीने तक बिना नागा पढ़ाया, इसीलिए तो कि वह प्रसन्न रहें। अब वह और क्या करें। रूपकुमारी की खफगी का रहस्य वह समझ गये। अगर गुरुसेवक वास्तव में पाँच सौ रुपये लाता है तो बेशक वह भाग्य का बली है। लेकिन दूसरों की ऊँची पेशानी देखकर अपना माथा तो नहीं फोड़ा जाता। किसी संयोग से उसे यह अवसर मिल गया। मगर हर एक को तो ऐसे अवसर नहीं मिलते। वह इसका पता लगाएंगे कि सचमुच उसे पाँच सौ

ही मिलते हैं, या महज डींग है। और मान लिया कि पाँच सौ मिलते हैं, तो क्या इससे रूपकुमारी को यह हक है कि वह उनको ताने दे, और उन्हें जली-कटी सुनाये। अगर इसी तरह वह भी रूपकुमारी से ज्यादा रूपवती और सुशीला रमणी को देखकर रूपकुमारी को कोसना शुरू करें तो कैसा हो! रूपकुमारी सुन्दरी है, मृदुभाषिणी है, त्यागमयी है लेकिन उससे बढ़कर सुन्दरी, मृदुभाषिणी त्यागमयी देवियों से दुनिया खाली नहीं है। तो क्या इस कारण वह रूपकुमारी का अनादर करें?

एक समय था, जब उनकी नजरों में रूपकुमारी से ज्यादा रूपवती रमणी संसार में न थी; लेकिन वह उन्माद कब का शान्त हो गया। भावुकता के संसार से वास्तविक जीवन में आये उन्हें एक युग बीत गया। अब तो विवाहित जीवन का उन्हें काफी अनुभव हो गया है। एक को दूसरे के गुण-दोष मालूम हो गये हैं। अब तो सन्तोष ही में उनका जीवन सुखी रह सकता है। मगर रूपकुमारी समझदार होकर भी इतनी मोटी-सी बात नहीं समझती!

फिर भी उन्हें रूपकुमारी से सहानुभूति ही हुई। वह उदार प्रकृति के आदमी थे और कल्पनाशील भी। उसकी कटु बातों का कुछ जवाब न दिया। शर्बत की तरह पी गये। अपनी बहन के ठाठ देखकर एक क्षण के लिए रूपकुमारी के मन में ऐसे निराशाजनक, अन्यायपूर्ण, दुःखद भावों का उठना बिलकुल स्वाभाविक है। रूपकुमारी कोई संन्यासिनी नहीं, विरागिनी नहीं कि हर एक दशा में अविचलित रहे।

इस तरह अपने मन को समझाकर उमानाथ ने गुरुसेवक के विषय में तहकीकात करने का संकल्प किया।

(2)

एक सप्ताह तक रूपकुमारी मानसिक अशान्ति की दशा में रही। बात-बात पर झुंझलाती, लड़कों को डाँटती; पति को कोसती, अपने नसीबों को रोती। घर का काम तो करना ही पड़ता था, लेकिन अब इस काम में उसे आनन्द

न आता था। बेगार-सी टालती थी। घर की जिन पुरानी-धुरानी चीजों से उसका आत्मीय सम्बन्ध-सा हो गया था, जिनकी सफाई और सजावट में वह व्यस्त रहा करती थी, उनकी तरफ अब आँख उठाकर भी न देखती। घर में एक ही खिदमतगार था। उसने जब देखा, बहूजी घर की तरफ से खुद ही लापरवाह हैं तो उसे क्या गरज थी कि सफाई करता। जो चीज जहाँ पड़ी थी, वहीं पड़ी रहती। कौन उठाकर ठिकाने से रखे। बच्चे माँ से बोलते डरते थे, और उमानाथ तो उसके साये से भागते थे। जो कुछ सामने थाली में आ जाता उसे पेट में डाल लेते और दफ्तर चले जाते। दफ्तर से लौटकर दोनों बच्चों को साथ ले लेते और कहीं घूमने निकल जाते। रूपकुमारी से कुछ कहना बारूद में दियासलाई लगाना था। हाँ, उनकी यह तहकीकात जारी थी।

एक दिन उमानाथ दफ्तर से लौटे तो उनके साथ गुरुसेवक भी थे। रूपकुमारी ने आज कई दिनों के बाद परिस्थिति से सहयोग कर लिया था और इस वक्त झाड़न लिए कुर्सियाँ और तिपाइयाँ साफ कर रही थी, कि गुरुसेवक ने अन्दर पहुँचकर सलाम किया। रूपकुमारी दिल में कट गयी। उमानाथ पर ऐसा क्रोध आया कि उसका मुंह नोच ले। इन्हें लाकर यहाँ क्यों खड़ा कर दिया? न कहना, न सुनना, बस बुला लाये। उसे इस दशा में देखकर गुरुसेवक दिल में क्या कहता होगा। मगर इन्हें अक्ल आयी ही कब थी। वह अपना परदा ढाँकती फिरती है और आप उसे खोलते फिरते हैं। जरा भी लज्जा नहीं। जैसे बेहयाई का बाना पहन लिया है। बरबस उसका अपमान करते हैं। न जाने उसने उनका क्या बिगाड़ा है?

आशीर्वाद देकर कुशल-समाचार पूछा और कुरसी रख दी। गुरुसेवक ने बैठते हुए कहा- आज भाई साहब ने मेरी दावत की है, मैं उनकी दावत पर तो न आता; लेकिन जब उन्होंने कहा, तुम्हारी भाभी का कड़ा तकाजा है, तब मुझे समय निकालना पड़ा था।

रूपकुमारी ने बात बनायी। घर का कलह छिपाना पड़ा- तुमसे उस दिन कुछ बातचीत न हो पायी। जी लगा हुआ था।

गुरुसेवक ने कमरे के चारों तरफ नजर दौड़ाकर कहा- इस पिंजड़े में तो आप लोगों को बड़ी तकलीफ होती होगी?

रूपकुमारी को ज्ञात हुआ, यह युवक कितना सुरुचिहीन, कितना अरसिक है। दूसरों के मनोभावों का आदर करना जैसे जानता ही नहीं। इसे इतनी-सी बात भी नहीं मालूम कि दुनिया में सभी भाग्यशाली नहीं होते। लाखों में एक ही कहीं भाग्यवान् निकलता है। और उसे भाग्यवान् ही क्यों कहा जाए? जहाँ बहुतों को दाना न मयस्सर हो, वहाँ थोड़े से आदमियों के भोग-विलास में कौन-सा सौभाग्य! जहाँ बहुत-से आदमी भूखों मर रहे हों, वहाँ दो-चार आदमी मोहनभोग उड़ायें तो यह उनकी बेहयाई और हृदयहीनता है, सौभाग्य कभी नहीं।

कुछ चिढ़कर बोली- पिंजड़े में रहना कठघरे में रहने से अच्छा है। पिंजड़े में निरीह पक्षी रहते हैं, कठघरा तो घातक जन्तुओं का ही निवास स्थान है।

गुरुसेवक शायद यह संकेत न समझ सका, बोला- मेरा तो इस घर में दम घुट जाए। मैं आपके लिए अपने घर के पास ही एक मकान ठीक करा दूंगा। खूब लम्बा-चौड़ा। आपसे कुछ किराया न लिया जाएगा। मकान हमारी मालकिन का है। मैं भी उसी के एक मकान में रहता हूँ। सैंकड़ों मकान हैं उनके पास, सैंकड़ों। सब मेरें अख्तियार में है। जिसे जो मकान चाहूँ, दे दूँ। मेरे अख्तियार में है। किराया लूँ या न लूँ। मैं आपके लिए सबसे अच्छा मकान ठीक करूंगा। मैं आपका बहुत अदब करता हूँ।

रूपकुमारी समझ गयी, महाशय इस वक्त नशे में हैं। अभी यों बहक रहे हैं। अब उसने गौर से देखा तो उनकी आँखें सिकुड़ गयी थीं, गाल कुछ फूल गये थे। जबान भी लड़खड़ाने लगी थी। एक जवान, खूबसूरत शरीफ चेहरा कुछ ऐसा शेखीबाज और निर्लज्ज हो गया कि उसे देखकर घृणा होती थी।

उसने एक क्षण बाद फिर बहकना शुरू किया- मैं आपका बहुत अदब करता हूँ, जी हाँ! आप मेरी बड़ी भाभी हैं। आपके लिए मेरी जान हाजिर है। आपके लिए एक मकान नहीं, सौ मकान तैयार हैं। मैं मिसेज लोहिया का मुख्तार हूँ। सब कुछ मेरे हाथ में है। सब कुछ, मैं जो कुछ कहता हूँ, वह आँखें बन्द करके मंजूर कर लेती हैं। मुझे अपना बेटा समझती हैं। मैं उसकी सारी जायदाद का मालिक हूँ। मि. लोहिया ने मुझे 20 रुपये पर रखा, 20 रुपये पर। वह बड़ा मालदार था। मगर किसी को नहीं मालूम; उसकी दौलत

कहाँ से आती थी किसी को नहीं मालूम। मेरे सिवा कोई नहीं जानता। वह खुफियाफरोश था। किसी से कहना नहीं। वह चोरी से कोकीन बेचता था। लाखों की आमदनी थी उसकी। अब वही व्यापार मैं करता हूँ। हर शहर में हमारे खुफिया एजेण्ट हैं। मि. लोहिया ने मुझे इस फन में उस्ताद बना दिया। जी हाँ! मजाल नहीं कि मुझे कोई गिरफ्तार कर ले, बड़े-बड़े अफसरों से मेरा याराना है। उनके मुंह में नोटों के पुलिन्दे ठूँस-ठूँसकर उनकी आवाज बन्द कर देता हूँ। कोई चूँ नहीं कर सकता। दिन-दहाड़े बेचता हूँ। हिसाब में लिखता हूँ, एक हजार रिश्वत दी। देता हूँ, पाँच सौ। बाकी यारों का है। बेदरेग रुपये आते हैं और बेदरेग खर्च करता हूँ। बुढ़िया को तो राम नाम से मतलब है। सत्तर चूहे खाके अब हज करने चली है। कोई मेरा हाथ पकड़ने वाला नहीं, कोई बोलने वाला नहीं, (जेब से नोटों का एक बण्डल निकालकर) यह आपके चरणों की भेंट है। मुझे दुआ दीजिए कि इसी शान से जिन्दगी कट जाय जो आत्मा और सदाचार के उपासक हैं उन्हें कुबेर लातें मारता है। लक्ष्मी उनको पकड़ती है, जो उसके लिए अपना दीन और ईमान सब कुछ छोड़ने को तैयार है। मुझे बुरा न कहिए। मैं कौन मालदार हूँ? जितने धनी हैं, वे सब-के-सब लुटेरे हैं, पक्के लुटेरे, डाकू। कल मेरे पास रुपये हो जाएं और मैं एक धर्मशाला बनवा दूँ। फिर देखिए मेरी कितनी वाह-वाह होती है। कौन पूछता है, मुझे दौलत कहाँ से मिली। जिस महात्मा को कहिए, बुलाकर उससे प्रशंसा करवा लूँ। मि. लोहिया को महात्माओं ने धर्म भूषण की उपाधि दी थी, इन स्वार्थी, पेट के बन्दरों ने। उस बुड्ढे को जिससे बड़ा कुकर्मी संसार में न होगा। यहाँ तो लूट है। एक वकील आधा घण्टा बहस करके पाँच सौ मार लेता है, एक डाक्टर जरा-सा नश्तर लगाकर एक हजार सीधा कर लेता है, एक जुआरी स्पेकुलेशन में एक-एक दिन में लाखों का वारा-न्यारा करता है। अगर उनकी आमदनी जायज है तो मेरी आमदनी भी जायज है। जी हाँ, जायज है, मेरी निगाह में बड़े-से-बड़े मालदार की भी कोई इज्जत नहीं। मैं जानता हूँ, वह कितना बड़ा हथकण्डेबाज है। यहाँ जो आदमी आँखों में धूल झोंक सके, वही सफल है! गरीबों को लूटकर मालदार हो जाना समाज की पुरानी परिपाटी है। मैं भी वही करता हूँ, जो दूसरे करते हैं। जीवन का उद्देश्य है ऐसा करना। खूब

लूटूंगा, खूब ऐश करूंगा और बुढ़ापे में खूब खैरात करूंगा। और एक दिन लीडर बन जाऊंगा। कहिए गिना दूँ। यहाँ कितने लोग जुआ खेल-खालकर करोड़पति हो गये, कितने औरतों का बाजार लगाकर करोड़पति हो गये...।

सहसा उमानाथ ने आकर कहा- मि. गुरुसेवक, क्या कर रहे हो? चलो चाय पी लो। ठण्डी हो रही है।

गुरुसेवक ऐसा हड़बड़ा उठा, मानो अपने सचेत रहने का प्रमाण देना चाहता हो। मगर पांव लड़खड़ाये और जमीन पर गिर पड़ा। फिर संभलकर उठा और झूमता-झूमता, ठोकरें खाता, बाहर चला गया। रूपकुमारी ने आजादी की साँस ली। यहाँ बैठे-बैठे उसे हौलदिल-सा हो रहा था। कमरे की हवा जैसे कुछ भारी हो गयी थी। जो प्रेरणाएँ कई दिन से अच्छे-अच्छे मनोहर रूप भरकर उसके मन में आ रही थीं, आज उसे उनका असली वीभत्स, घिनौना रूप नजर आया। जिस त्याग, सादगी और साधुता के वातावरण में अब तक उसकी जिन्दगी गुजरी थी, उसमें इस तरह के दाव-पेंच, छल-कपट और पतित स्वार्थ का घुसना बिलकुल ऐसा ही था, जैसे किसी बाग में सांडों का एक झुण्ड घुस आये। इन दामों वह दुनिया की सारी दौलत और सारा ऐश खरीदने को भी तैयार न हो सकती थी। नहीं, अब रामदुलारी के भाग्य से अपने भाग्य का बदला न करेगी। वह अपने हाल में खुश है। रामदुलारी पर उसे दया आयी, जो भोग-विलास की धुन और अमीर कहलाने के मोह में अपनी आत्मा का सर्वनाश कर रही है। मगर वह बेचारी भी क्या करे? और गुरुसेवक का भी क्या दोष है। जिस समाज में दौलत पुजती है, जहाँ मनुष्य का मोल उसके बैंक-एकाउण्ट और टीम-टाम से आँका जाता है, जहाँ पग-पग पर प्रलोभनों का जाल बिछा हुआ है और समाज की कुव्यवस्था आदमी में ईर्ष्या, द्वेष, अपहरण और नीचता के भावों को उकसाती और उभारती रहती है, गुरुसेवक और रामदुलारी उस जाल में फँस जाएँ, उस प्रवाह में बह जाएँ तो कोई अचरज नहीं।

उसी वक्त उमानाथ ने आकर कहा- गुरुसेवक यहाँ बैठा-बैठा क्या बहक रहा था? मैंने तो उसे विदा कर दिया। जी डरता था, कहीं पुलिस उसके पीछे न लगी हो, नहीं तो मैं भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस जाऊँ।

•

रामकुमारी ने क्षमा-प्रार्थी नेत्रों से उन्हें देखकर जवाब दिया- वही अपनी खुफियाफरोशी की डींग मार रहा था।

'मुझे भी मिसेज लोहिया से मिलने को कह गया।'

'जी नहीं, आप अपनी क्लर्की किये जाइए। इसी में हमारा कल्याण है।'

'मगर क्लर्की में वह ऐश कहाँ? क्यों न साल-भर की छुट्टी लेकर जरा उस दुनिया की भी सैर करूँ!'

'मुझे अब उस ऐश का मोह नहीं रहा।'

'दिल से कहती हो?'

'सच्चे दिल से।'

उमानाथ एक मिनट तक चुप रहने के बाद फिर बोले- मैं आकर तुमसे यह वृत्तान्त कहता तो तुम्हें विश्वास आता या नहीं, सच कहना?

'कभी नहीं, मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि अपने स्वार्थ के लिए कोई आदमी दुनिया को विष खिला सकता है!'

'मुझे सारा हाल पुलिस के सब इन्सपेक्टर से मालूम हो गया था। मैंने उसे खूब शराब पिला दी थी कि नशे में बहकेगा जरूर और सब कुछ उगल देगा।'

'ललचता तो तुम्हारा जी भी था।'

'हाँ ललचता तो था, और अब भी ललच रहा है। मगर ऐश करने के लिए जिस हुनर की जरूरत है, वह कहाँ से लाऊंगा?'

'ईश्वर न करे, वह हुनर तुम में आये। मुझे तो उस बेचारे पर तरस आती है। मालूम नहीं खैरियत से घर पहुँच गया या नहीं!'

'उसकी कार थी। कोई चिन्ता नहीं।'

रूपकुमारी एक क्षण जमीन की तरफ ताकती रही। फिर बोली- तुम मुझे दुलारी के घर पहुँचा दो। अभी शायद मैं उसकी कुछ मदद कर सकूँ। जिस बाग की वह सैर कर रही है उसके चारों ओर निशाचर घात लगाये बैठे हैं। शायद मैं उसे बचा सकूँ।

उमानाथ ने देखा, उसकी छवि कितनी दया-पुलकित हो उठी है।

प्रतिध्वनि
जयशंकर प्रसाद

(1)

मनुष्य की चिता जल जाती है, और बुझ भी जाती है परन्तु उसकी छाती की जलन, द्वेष की ज्वाला, सम्भव है, उसके बाद भी धाक्-धाक करती हुई जला करे।

तारा जिस दिन विधवा हुई, जिस समय सब लोग रो-पीट रहे थे, उसकी ननद ने, भाई के मरने पर भी, रुदन के साथ, व्यंग स्वर में कहा- "अरे मैया रे, किसका पाप किसे खा गया रे!"- तभी आसन्न वैधव्य ठेलकर, अपने कानों को ऊँचा करके, तारा ने वह तीक्ष्ण व्यंग रुदन के कोलाहल में भी सुन लिया था।

तारा सम्पन्न थी, इसलिए वैधव्य उसे दूर से ही डराकर चला जाता। उसका पूर्ण अनुभव वह कभी न कर सकी। हाँ, ननद रामा अपनी दरिद्रता के दिन अपनी कन्या श्यामा के साथ किसी तरह काटने लगी। दहेज मिलने की निराशा से कोई ब्याह करने के लिए प्रस्तुत न होता। श्यामा चौदह बरस की हो चली। बहुत चेष्टा करके भी रामा उसका ब्याह न कर सकी। वह चल बसी।

श्यामा निस्सहाय अकेली हो गई। पर जीवन के जितने दिन हैं, वे कारावासी के समान काटने ही होंगे। वह अकेली ही गंगा-तट पर अपनी बारी से सटे हुए कच्चे झोपड़े में रहने लगी।

मन्नी नाम की एक बुढिया, जिसे 'दादी' कहती थी, रात को उसके पास सो जाती और न जाने कहाँ से, कैसे उसके खाने-पीने का कुछ प्रबन्ध कर ही देती। धीरे-धीरे दरिद्रता के सब अवशिष्ट चिह्न बिककर श्यामा के पेट में चले गये। पर, उसकी आम की बारी अभी नीलाम होने के लिए हरी-भरी थी!

कोमल आतप गंगा के शीतल शरीर में अभी ऊष्मा उत्पन्न करने में असमर्थ था। नवीन किसलय उससे चमक उठे थे। वसन्त की किरणों की चोट से कोयल कुहुक उठी। आम की कैरियों के गुच्छे हिलने लगे। उस आम की बारी में माधव-ऋतु का डेरा था और श्यामा के कमनीय कलेवर में यौवन था।

श्यामा अपने कच्चे घर के द्वार पर खड़ी हुई मेघ-संक्रान्ति का पर्व-स्नान करने वालों को कगार के नीचे देख रही थी। समीप होने पर भी वह मनुष्यों की भीड़ उसे चींटियाँ रेंगती हुई जैसी दिखायी पड़ती थी। मन्नी ने आते ही उसका हाथ पकड़कर कहा- "चलो बेटी, हम लोग भी स्नान कर आवें।"

उसने कहा- "नहीं दादी, आज अंग-अंग टूट रहा है, जैसे ज्वर आने को है।"

मन्नी चली गई।

तारा स्नान करके दासी के साथ कगारे के ऊपर चढ़ने लगी। श्यामा की बारी के पास से ही पथ था। किसी को वहाँ न देखकर तारा ने सन्तुष्ट होकर साँस ली। कैरियों से गदराई हुई डाली से उसका सिर लग गया। डाली राह में झुकी पड़ी थी। तारा ने देखा, कोई नहीं है; हाथ बढ़ाकर कुछ कैरियाँ तोड़ लीं।

सहसा किसी ने कहा- "और तोड़ लो मामी, कल तो यह नीलाम ही होगा!"

तारा की अग्नि-बाण-सी आँखें किसी को जला देने के लिए खोजने लगीं। फिर उसके हृदय में वही बहुत दिन की बात प्रतिध्वनित होने लगी- "किसका पाप किसको खा गया, रे!"- तारा चौंक उठी। उसने सोचा, रामा की कन्या व्यंग कर रही है- भीख लेने के लिए कह रही है। तारा होंठ चबाती हुई चली गई।

(2)

एक सौ पाँच- एक,

एक सौ पाँच- दो,

एक सौ पाँच रुपये- तीन!

बोली हो गई। अमीन ने पूछा- "नीलाम का चौथाई रुपया कौन जमा करता है?"

एक गठीले युवक ने कहा- "चौथाई नहीं, कुल रुपये लीजिये।" तारा के नाम की रसीद बना रुपया सामने रख दिया गया।

श्यामा एक आम के वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठी थी। उसे और कुछ नहीं सुनाई पड़ता था, केवल डुग्गियों के साथ एक-दो-तीन की प्रतिध्वनि कानों में गूँज रही थी। एक समझदार मनुष्य ने कहा- "चलो, अच्छा ही हुआ, तारा ने अनाथ लड़की के बैठने का ठिकाना तो बना रहने दिया; नहीं तो गंगा किनारे का घर और तीन बीघे की बारी, एक सौ पाँच रुपये में! तारा ने बहुत अच्छा किया।"

बुढ़िया मन्नी ने कहा- "भगवान् जाने, ठिकाना कहाँ होगा!"

श्यामा चुपचाप सुनती रही। संध्या हो गई। जिनका उसी अमराई में नीड़ था, उन पक्षियों का झुण्ड कलरव करता हुआ घर लौटने लगा। पर श्यामा न हिली; वह भूल गयी कि उसका भी घर है।

बुढ़िया के साथ अमीन साहब आकर खड़े हो गये। अमीन एक सुन्दर कहे जाने योग्य युवक थे, और उनका यह सहज विश्वास था कि कोई भी स्त्री हो, मुझे एक बार अवश्य देखेगी। श्यामा के सौन्दर्य को तो दारिद्रय ने ढँक लिया था; पर उसका यौवन छिपने के योग्य न था। कुमार यौवन अपनी क्रीड़ा में विह्वल था। अमीन ने कहा- "मन्नी! पूछो, मैं रुपया दे दूँ- अभी एक महीने की अवधि है, रुपया दे देने से नीलाम रुक जायगा!"

श्यामा ने एक बार तीखी आँखों से अमीन की ओर देखा। वह पुष्ट कलेवर अमीन, उस अनाथ बालिका की दृष्टि न सह सका, धीरे से चला

गया। मन्नी ने देखा, बरसात की-सी गीली चिता श्यामा की आँखों में जल रही है। मन्नी का साहस न हुआ कि उससे घर चलने के लिए कहे। उसने सोचा, ठहरकर आऊंगी तो इसे घर लिवा जाऊंगी। परन्तु जब वह लौटकर आई, तो रजनी के अन्धकार में बहुत खोजने पर भी श्यामा को न पा सकी।

(3)

तारा का उत्तराधिकारी हुआ- उसके भाई का पुत्र प्रकाश। अकस्मात् सम्पत्ति मिल जाने से जैसा प्रायः हुआ करता है, वही हुआ- प्रकाश अपने-आपे में न रह सका। वह उस देहात में प्रथम श्रेणी का विलासी बन बैठा। उसने तारा के पहले घर से कोस-भर दूर श्यामा की बारी को भली-भांति सजाया; उसका कच्चा घर तोड़कर बंगला बन गया। अमराई में सडकें और क्यारियाँ दौड़ने लगीं। यहीं प्रकाश बाबू की बैठक जमी। अब इसे उसके नौकर 'छावनी' कहते थे।

आषाढ़ का महीना था। सबेरे ही बड़ी उमस थी। पुरवाई से घन-मण्डल स्थिर हो रहा था। वर्षा होने की पूरी सम्भावना थी। पक्षियों के झुण्ड आकाश में अस्त-व्यस्त घूम रहे थे। एक पगली गंगा के तट के ऊपर की ओर चढ़ रही थी। वह अपने प्रत्येक पाद-विक्षेप पर एक-दो-तीन अस्फुट स्वर से कह देती, फिर आकाश की ओर देखने लगती थी। अमराई के खुले फाटक से वह घुस आई और पास के वृक्षों के नीचे घूमती हुई "एक-दो-तीन" करके गिनने लगी।

लहरीले पवन का एक झोंका आया; तिरछी बूंदों की एक बाढ़ पड़ गई। दो-चार आम भी चू पड़े। पगली घबरा गई। तीन से अधिक वह गिनना ही नहीं जानती थी। इधर बूंदों को गिने कि आमों को! बड़ी गड़बड़ी हुई। पर वह मेघ का टुकड़ा बरसता हुआ निकल गया। पगली एक बार स्वस्थ हो गई।

महोखा एक डाल से बोलने लगा। डुग्गी के समान उसका "डूप-डूप-डूप" शब्द पगली को पहचाना हुआ-सा मालूम पड़ा। वह फिर गिनने लगी-

एक-दो-तीन! उसके चुप हो जाने पर पगली ने डालों की ओर देखा और प्रसन्न होकर बोली- एक-दो-तीन! इस बार उसकी गिनती में बड़ा उल्लास था, विस्मय था और हर्ष भी। उसने एक ही डाल में पके हुए तीन आमों को वृन्तों-सहित तोड़ लिया, और उन्हें झुकाते हुए गिनने लगी। पगली इस बार सचमुच बालिका बन गई, जैसे खिलौने के साथ खेलने लगी।

माली आ गया। उसने गाली दी, मारने के लिए हाथ उठाया। पगली अपना खेल छोड़कर चुपचाप उसकी ओर एकटक देखने लगी! वह उसका हाथ पकड़कर प्रकाश बाबू के पास ले गया।

प्रकाश यक्ष्मा से पीड़ित होकर इन दिनों यहाँ निरन्तर रहने लगा था। वह खाँसता जाता था; और तकिये के सहारे बैठा हुआ पीकदान में रक्त और कफ थूकता जाता था। कंकाल-सा शरीर पीला पड़ गया था। मुख में केवल नाक और बड़ी-बड़ी आँखे अपना अस्तित्व चिल्लाकर कह रही थीं। पगली को पकड़कर माली उसके सामने ले आया।

विलासी प्रकाश ने देखा, पागल यौवन अभी उस पगली के पीछे लगा था। कामुक प्रकाश को आज अपने रोग पर क्रोध हुआ, और पूर्ण मात्रा में हुआ। पर क्रोध धक्का खाकर पगली की ओर चला आया। प्रकाश ने आम देखकर ही समझ लिया और फूहड़ गालियों की बौछार से उसकी अभ्यर्थना की।

पगली ने कहा- "यह किस पाप का फल है? तू जानता है, इसे कौन खाएगा? बोल! कौन मरेगा? बोल! एक-दो-तीन"-

"चोरी को पागलपन में छिपाना चाहती है! अभी तो तुझे बीसों चाहने वाले मिलेंगे! चोरी क्यों करती है?"- प्रकाश ने कहा।

एक बार पगली का पागलपन, लाल वस्त्र पहनकर उसकी आँखों में नाच उठा। उसने आम तोड़-तोड़ कर प्रकाश के क्षय-जर्जर हृदय पर खींचकर मारते हुए गिना- एक-दो-तीन! प्रकाश तकिये पर चित्त लेटकर हिचकियाँ लेने लगा और पगली हँसते हुए गिनने लगी- एक-दो-तीन। उनकी प्रतिध्वनि अमराई में गूँज उठी।

इंद्रजाल

जयशंकर प्रसाद

(1)

गाँव के बाहर, एक छोटे-से बंजर में कंजरों का दल पड़ा था। उस परिवार में टट्टू, भैंसे और कुत्तों को मिलाकर इक्कीस प्राणी थे। उसका सरदार मैकू, लम्बी-चौड़ी हड्डियों वाला एक अधेड़ पुरुष था। दया-माया उसके पास फटकने नहीं पाती थी। उसकी घनी दाढ़ी और मूँछों के भीतर प्रसन्नता की हँसी छिपी ही रह जाती। गाँव में भीख मांगने के लिए जब कंजरों की स्त्रियाँ जातीं, तो उनके लिए मैकू की आज्ञा थी कि कुछ न मिलने पर अपने बच्चों को निर्दयता से गृहस्थ के द्वार पर जो स्त्री न पटक देगी, उसको भयानक दण्ड मिलेगा।

उस निर्दय झुण्ड में गाने वाली एक लड़की थी और एक बाँसुरी बजाने वाला युवक। ये दोनों भी गा-बजाकर जो पाते, वह मैकू के चरणों में लाकर रख देते। फिर भी गोली और बेला की प्रसन्नता की सीमा न थी। उन दोनों का नित्य सम्पर्क ही उनके लिए स्वर्गीय सुख था। इन घुमक्कड़ों के दल में ये दोनों विभिन्न रुचि के प्राणी थे। बेला बेडिन थी। माँ के मर जाने पर अपने शराबी और अकर्मण्य पिता के साथ वह कंजरों के हाथ लगी। अपनी माता के गाने-बजाने का संस्कार उसकी नस-नस में भरा था। वह बचपन से ही अपनी माता का अनुकरण करती हुई अलापती रहती थी।

शासन की कठोरता के कारण कंजरों का डाका और लड़कियों के चुराने का व्यापार बंद हो चला था। फिर भी मैकू अवसर से नहीं चूकता। अपने दल की उन्नति में बराबर लगा ही रहता। इस तरह गोली के बाप के मर जाने पर-जो एक चतुर नट था- मैकू ने उसकी खेल की पिटारी के साथ गोली पर भी अधिकार जमाया। गोली महुअर तो बजाता ही था, पर बेला का साथ होने पर उसने बाँसुरी बजाने में अभ्यास किया। पहले तो उसकी

नट-विद्या में बेला भी मनोयोग से लगी; किन्तु दोनों को भानुमती वाली पिटारी ढोकर दो-चार पैसे कमाना अच्छा न लगा। दोनों को मालूम हुआ कि दर्शक उस खेल से अधिक उसका गाना पसंद करते हैं। दोनों का झुकाव उसी ओर हुआ। पैसा भी मिलने लगा। इन नवागन्तुक बाहरियों की कंजरों के दल में प्रतिष्ठा बढ़ी।

बेला साँवली थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोक-पिण्ड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती। फिर भी गोली से अभी उसका ब्याह नहीं हुआ था।

गोली जब बाँसुरी बजाने लगता, तब बेला के साहित्यहीन गीत जैसे प्रेम के माधुर्य की व्याख्या करने लगते। गाँव के लोग उसके गीतों के लिए कंजरों को शीघ्र हटाने का उद्योग नहीं करते! जहाँ अपने सदस्यों के कारण कंजरों का वह दल घृणा और भय का पात्र था, वहाँ गोली और बेला का संगीत आकर्षण के लिए पर्याप्त था; किन्तु इसी में एक व्यक्ति का अवांछनीय सहयोग भी आवश्यक था। वह था भूरे, छोटी-सी ढोल लेकर उसे भी बेला का साथ देना पड़ता।

भूरे सचमुच भूरा भेड़िया था। गोली अधरों से बाँसुरी लगाये अर्द्ध-निमीलित आँखों के अन्तराल से, बेला के मुख को देखता हुआ जब हृदय की फूँक से बाँस के टुकड़े को अनुप्राणित कर देता, तब विकट घृणा से ताड़ित होकर भूरे की भयानक थाप ढोल पर जाती। क्षण-भर के लिए जैसे दोनों चौंक उठते।

उस दिन ठाकुर के गढ़ में बेला का दल गाने के लिए गया था। पुरस्कार में कपड़े-रुपये तो मिले ही थे; बेला को एक अंगूठी भी मिली थी। मैकू उन सबको देखकर प्रसन्न हो रहा था। इतने में सिरकी के बाहर कुछ हल्ला सुनाई पड़ा। मैकू ने बाहर आकर देखा कि भूरे और गोली में लड़ाई हो रही थी। मैकू के कर्कश स्वर से दोनों भयभीत हो गये। गोली ने कहा- "मैं

बैठा था, भूरे ने मुझको गालियाँ दीं। फिर भी मैं न बोला, इस पर उसने मुझे पैर से ठोकर लगा दी।"

"और यह समझता है कि मेरी बाँसुरी के बिना बेला गा ही नहीं सकती। मुझसे कहने लगा कि आज तुम ढोलक बेताल बजा रहे थे।" भूरे का कण्ठ क्रोध से भर्राया हुआ था।

मैकू हँस पड़ा। वह जानता था कि गोली युवक होने पर भी सुकुमार और अपने प्रेम की माधुरी में विह्वल, लजीला और निरीह था। अपने को प्रमाणित करने की चेष्टा उसमें थी ही नहीं। वह आज जो कुछ उग्र हो गया, इसका कारण है केवल भूरे की प्रतिद्वन्द्विता।

बेला भी वहाँ आ गयी थी। उसने घृणा से भूरे की ओर देखकर कहा- "तो क्या तुम सचमुच बेताल नहीं बजा रहे थे?"

"मैं बेताल न बजाऊंगा, तो दूसरा कौन बजायेगा। अब तो तुमको नये यार न मिले हैं। बेला! तुझको मालूम नहीं तेरा बाप मुझसे तेरा ब्याह ठीक करके मरा है। इसी बात पर मैंने उसे अपना नैपाली का दोगला टट्टू दे दिया था, जिस पर अब भी तू चढ़कर चलती है।" भूरे का मुंह क्रोध के झाग से भर गया था। वह और भी कुछ बकता; किन्तु मैकू की डाँट पड़ी। सब चुप हो गये।

उस निर्जन प्रान्त में जब अन्धकार खुले आकाश के नीचे तारों से खेल रहा था, तब बेला बैठी कुछ गुनगुना रही थी।

कंजरों की झोपड़ियों के पास ही पलाश का छोटा-सा जंगल था। उनमें बेला के गीत गूँज रहे थे। जैसे कमल के पास मधुकर को जाने से कोई रोक नहीं सकता; उसी तरह गोली भी कब मानने वाला था। आज उसके निरीह हृदय में संघर्ष के कारण आत्मविश्वास का जन्म हो गया था। अपने प्रेम के लिए, अपने वास्तविक अधिकार के लिए झगड़ने की शक्ति उत्पन्न हो गयी थी। उसका छुरा कमर में था। हाथ में बाँसुरी थी। बेला की गुनगुनाहट बंद होते ही बाँसुरी में गोली उसी तान को दुहराने लगा। दोनों वन-विहंगम की तरह उस अंधेरे कानन में किलकारने लगे। आज प्रेम के आवेश ने आवरण हटा दिया था, वे नाचने लगे। आज तारों की क्षीण ज्योति में हृदय-से-हृदय

मिले, पूर्ण आवेग में। आज बेला के जीवन में यौवन का और गोली के हृदय में पौरुष का प्रथम उन्मेष था।

किन्तु भूरा भी वहाँ आने से नहीं रुका। उसके हाथ में भी भयानक छुरा था। आलिंगन में आबद्ध बेला ने चीत्कार किया। गोली छटककर दूर जा खड़ा हुआ, किन्तु घाव ओछा लगा।

बाघ की तरह झपटकर गोली ने दूसरा वार किया। भूरे सम्हाल न सका। फिर तीसरा वार चलाना ही चाहता था कि मैकू ने गोली का हाथ पकड़ लिया। वह नीचे सिर किये खड़ा रहा।

मैकू ने कड़क कर कहा- "बेला, भूरे से तुझे ब्याह करना ही होगा। यह खेल अच्छा नहीं।"

उसी क्षण सारी बातें गोली के मस्तक में छाया- चित्र-सी नाच उठीं। उसने छुरा धीरे से गिरा दिया। उसका हाथ छूट गया। जब बेला और मैकू भूरे का हाथ पकड़कर चले गए, तब गोली कहाँ जा रहा है, इसका किसी को ध्यान न रहा।

(2)

कंजर-परिवार में बेला भूरे की स्त्री मानी जाने लगी। बेला ने भी सिर झुकाकर इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु उसे पलाश के जंगल में संध्या के समय जाने से कोई भी नहीं रोक सकता था। उसे जैसे सायंकाल में एक हलका-सा उन्माद हो जाता। भूरे या मैकू भी उसे वहाँ जाने से रोकने में असमर्थ थे। उसकी दृढ़ता-भरी आँखों से घोर विरोध नाचने लगता।

बरसात का आरम्भ था। गाँव की ओर से पुलिस के पास कोई विरोध की सूचना भी नहीं मिली थी। गाँव वालों की छुरी-हँसिया और काठ-कबाड़ के कितने ही काम बनाकर वे लोग पैसे लेते थे। कुछ अन्न यों भी मिल जाता। चिडिया पकड़कर, पक्षियों का तेल बनाकर, जड़ी-बूटी की दवा तथा उत्तेजक औषधियों और मदिरा का व्यापार करके, कंजरों ने गाँव तथा गढ़ के लोगों से सद्भाव भी बना लिया था। सबके ऊपर आकर्षक बाँसुरी जब

उसके साथ नहीं बजती थी, तब भी बेला के गले में एक ऐसी नयी टीस उत्पन्न हो गयी थी, जिसमें बाँसुरी का स्वर सुनाई पड़ता था।

अन्तर में भरे हुए निष्फल प्रेम से युवती का सौन्दर्य निखर आया था। उसके कटाक्ष अलस, गति मदिर और वाणी झंकार से भर गयी थी। ठाकुर साहब के गढ़ में उसका गाना प्रायः हुआ करता था।

छींट का घाघरा और चोली, उस पर गोटे से ढँकी हुई ओढ़नी सहज ही खिसकती रहती। कहना न होगा कि आधा गाँव उसके लिए पागल था। बालक पास से, युवक ठीक-ठिकाने से और बूढ़े अपनी मर्यादा, आदर्शवादिता की रक्षा करते हुए दूर से उसकी तान सुनने के लिए, एक झलक देखने के लिए घात लगाये रहते।

गढ़ के चौक में जब उसका गाना जमता, तो दूसरा काम करते हुए अन्यमनस्कता की आड़ में मनोयोग से और कनखियों से ठाकुर उसे देख लिया करते।

मैकू घाघ था। उसने ताड़ लिया। उस दिन संगीत बंद होने पर पुरस्कार मिल जाने पर और भूरे के साथ बेला के गढ़ के बाहर जाने पर भी मैकू वहीं थोड़ी देर तक खड़ा रहा। ठाकुर ने उसे देखकर पूछा- "क्या है?"

"सरकार! कुछ कहना है।"

"क्या?"

"यह छोकरी इस गाँव से जाना नहीं चाहती। उधर पुलिस तंग कर रही है।"

"जाना नहीं चाहती, क्यों?"

"वह तो घूम-घाम कर गढ़ में आ जाती है। खाने को मिल जाता है..." मैकू आगे की बात चुप होकर कुछ-कुछ संकेत-भरी मुस्कराहट से कह देना चाहता था।

ठाकुर के मन में हलचल होने लगी। उसे दबाकर प्रतिष्ठा का ध्यान करके ठाकुर ने कहा- "तो मैं क्या करूँ?"

"सरकार! वह तो साँझ होते ही पलाश के जंगल में अकेली चली जाती है। वहीं बैठी हुई बड़ी रात तक गाया करती है।"

"हूँ!"

"एक दिन सरकार धमका दें, तो हम लोग उसे ले-देकर आगे कहीं चले जाएँ।"

"अच्छा।"

मैकू जाल फैलाकर चला आया। एक हजार की बोहनी की कल्पना करते वह अपनी सिरकी में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

(3)

बेला के सुन्दर अंग की मेघ-माला प्रेमराशि की रजत-रेखा से उद्भासित हो उठी थी। उसके हृदय में यह विश्वास जम गया था कि भूरे के साथ घर बसाना गोली के प्रेम के साथ विश्वासघात करना है। उसका वास्तविक पति तो गोली ही है। बेला में यह उच्छृंखल भावना विकट ताण्डव करने लगी। उसके हृदय में वसन्त का विकास था। उमंग में मलयानिल की गति थी। कण्ठ में वनस्थली की काकली थी। आँखों में कुसुमोत्सव था और प्रत्येक आन्दोलन में परिमल का उद्गार था। उसकी मादकता बरसाती नदी की तरह वेगवती थी।

आज उसने अपने जूड़े में जंगली करौंदे के फूलों की माला लपेटकर, भरी मस्ती में जंगल की ओर चलने के लिए पैर बढ़ाया, तो भूरे ने डाँटकर कहा- "कहाँ चली?"

"यार के पास।" उसने छूटते ही कहा।

बेला के सहवास में आने पर अपनी लघुता को जानते हुए मसोसकर भूरे ने कहा- "तू खून कराये बिना चैन न लेगी।"

बेला की आँखों में गोली का और उसके परिवर्धमान प्रेमांकुर का चित्र था, जो उसके हट जाने पर विरह-जल से हरा-भरा हो उठा था। बेला पलाश के जंगल में अपने बिछड़े हुए प्रियतम के उद्देश्य से दो-चार विरह-वेदना की तानों की प्रतिध्वनि छोड़ आने का काल्पनिक सुख नहीं छोड़ सकती थी।

उस एकान्त संध्या में बरसाती झिल्लियों की झनकार से वायुमण्डल गूँज रहा था। बेला अपने परिचित पलाश के नीचे बैठकर गाने लगी-

चीन्हत नाहीं बदल गये नैना...

ऐसा मालूम होता था कि सचमुच गोली उस अन्धकार में अपरिचित की तरह मुंह फिराकर चला जा रहा है। बेला की मनोवेदना को पहचानने की क्षमता उसने खो दी है।

बेला का एकान्त में विरह-निवेदन उसकी भाव-प्रवणता को और भी उत्तेजित करता था। पलाश का जंगल उसकी कातर कुहुक से गूँज रहा था। सहसा उस निस्तब्धता को भंग करते हुए घोड़े पर सवार ठाकुर साहब वहाँ आ पहुँचे।

"अरे बेला! तू यहाँ क्या कर रही है?"

बेला की स्वर-लहरी रुक गयी थी। उसने देखा ठाकुर साहब! महत्व का सम्पूर्ण चित्र, कई बार जिसे उसने अपने मन की असंयत कल्पना में दुर्गम शैल-शृंग समझकर अपने भ्रम पर अपनी हँसी उड़ा चुकी थी। वह सकुचाकर खड़ी हो गयी। बोली नहीं, मन में सोच रही थी- "गोली को छोड़कर भूरे के साथ रहना क्या उचित है? और नहीं तो फिर..."

ठाकुर ने कहा- "तो तुम्हारे साथ कोई नहीं है। कोई जानवर निकल आवे, तो?"

बेला खिलखिलाकर हँस पड़ी। ठाकुर का प्रमाद बढ़ चला था। घोड़े से झुककर उसका कन्धा पकड़ते हुए कहा, "चलो, तुमको पहुँचा दें।"

उसका शरीर काँप रहा था, और ठाकुर आवेश में भर रहे थे। उन्होंने कहा- "बेला, मेरे यहाँ चलोगी?"

"भूरे मेरा पति है!" बेला के इस कथन में भयानक व्यंग था। वह भूरे से छुटकारा पाने के लिए तरस रही थी। उसने धीरे से अपना सिर ठाकुर की जाँघ से सटा दिया। एक क्षण के लिए दोनों चुप थे। फिर उसी समय अन्धकार में दो मूर्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। कठोर कण्ठ से भूरे ने पुकारा- "बेला!"

ठाकुर सावधान हो गये थे। उनका हाथ बगल की तलवार की मूठ पर

जा पड़ा। भूरे ने कहा- "जंगल में किसलिए तू आती थी, यह मुझे आज मालूम हुआ। चल, तेरा खून पिये बिना न छोड़ूंगा।"

ठाकुर के अपराध का आरम्भ तो उनके मन में हो ही चुका था। उन्होंने अपने को छिपाने का प्रयत्न छोड़ दिया। कड़ककर बोले- "खून करने के पहले अपनी बात भी सोच लो, तुम मुझ पर संदेह करते हो, तो यह तुम्हारा भ्रम है। मैं तो..."

अब मैकू आगे आया। उसने कहा- "सरकार! बेला अब कंजरों के दल में नहीं रह सकेगी।"

"तो तुम क्या कहना चाहते हो?" ठाकुर साहब अपने में आ रहे थे, फिर भी घटना-चक्र से विवश थे।

"अब यह आपके पास रह सकती है। भूरे इसे लेकर हम लोगों के संग नहीं रह सकता।" मैकू पूरा खिलाड़ी था। उसके सामने उस अन्धकार में रुपये चमक रहे थे।

ठाकुर को अपने अहंकार का आश्रय मिला। थोड़ा-सा विवेक, जो उस अन्धकार में झिलमिला रहा था, बुझ गया। उन्होंने कहा- "तब तुम क्या चाहते हो?"

"एक हजार।"

"चलो, मेरे साथ"- कहकर बेला का हाथ पकड़कर ठाकुर ने घोड़े को आगे बढ़ाया। भूरे कुछ भुनभुना रहा था; पर मैकू ने उसे दूसरी ओर भेजकर ठाकुर का संग पकड़ लिया। बेला रिकाब पकड़े चली जा रही थी।

दूसरे दिन कंजरों का दल उस गाँव से चला गया।

(4)

ऊपर की घटना को कई साल बीत गये। बेला ठाकुर साहब की एकमात्र प्रेमिका समझी जाती है। अब उसकी प्रतिष्ठा अन्य कुल-वधुओं की तरह होने लगी है। नये उपकरणों से उसका घर सजाया गया है। उस्तादों से गाना सीखा है। गढ़ के भीतर ही उसकी छोटी-सी साफ-सुथरी हवेली है। ठाकुर

साहब की उमंग की रातें वहीं कटती हैं। फिर भी ठाकुर कभी-कभी प्रत्यक्ष देख पाते कि बेला उनकी नहीं है! वह न जाने कैसे एक भ्रम में पड़ गये। बात निबाहने की आ पड़ी।

एक दिन एक नट आया। उसने अनेक तरह के खेल दिखलाये। उसके साथ उसकी स्त्री थी, वह घूँघट ऊँचा नहीं करती थी। खेल दिखलाकर जब अपनी पिटारी लेकर जाने लगा, तो कुछ मनचले लोगों ने पूछा- "क्यों जी, तुम्हारी स्त्री कोई खेल नहीं करती क्या?"

"करती तो है सरकार! फिर किसी दिन दिखलाऊंगा।" कहकर वह चला गया; किन्तु उसकी बाँसुरी की धुन बेला के कानों में उन्माद का आह्वान सुना रही थी। पिंजड़े की वन-विहंगनी को वसन्त की फूली हुई डाली का स्मरण हो आया था।

दूसरे दिन गढ़ में भारी जमघट लगा। गोली का खेल जम रहा था। सब लोग उसके हस्त-कौशल में मुग्ध थे। सहसा उसने कहा- "सरकार! एक बड़ा भारी दैत्य आकाश में आ गया है, मैं उससे लड़ने जाता हूँ, मेरी स्त्री की रक्षा आप लोग कीजियेगा।"

गोली ने एक डोरी निकालकर उसको ऊपर आकाश की ओर फेंका। वह सीधी तन गयी। सबके देखते-देखते गोली उसी के सहारे आकाश में चढकर अदृश्य हो गया। सब लोग मुग्ध होकर भविष्य की प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी को यह ध्यान नहीं रहा कि स्त्री अब कहाँ है?

गढ़ के फाटक की ओर सबकी दृष्टि फिर गयी। गोली लहू से रंगा चला आ रहा था। उसने आकर ठाकुर को सलाम किया और कहा- "सरकार! मैंने उस दैत्य को हरा दिया। अब मुझे इनाम मिलना चाहिए।"

सब लोग उस पर प्रसन्न होकर पैसों-रुपयों की बौछार करने लगे। उसने झोली भरकर इधर-उधर देखा, फिर कहा- "सरकार मेरी स्त्री भी अब मिलनी चाहिए, मैं भी...।" किन्तु यह क्या, वहाँ तो उसकी स्त्री का पता नहीं। गोली सिर पकड़कर शोक-मुद्रा में बैठ गया। जब खोजने पर उसकी स्त्री नहीं मिली, तो उसने चिल्लाकर कहा- "यह अन्याय इस राज्य में नहीं होना चाहिए। मेरी सुन्दरी स्त्री को ठाकुर साहब ने गढ़ के भीतर कहीं छिपा

दिया। मेरी योगिनी कह रही है।" सब लोग हँसने लगे। लोगों ने समझा, यह कोई दूसरा खेल दिखलाने जा रहा है। ठाकुर ने कहा- "तो तू अपनी सुन्दर स्त्री मेरे गढ़ में से खोज ला!" अन्धकार होने लगा था। उसने जैसे घबड़ाकर चारों ओर देखने का अभिनय किया। फिर आँख मूँदकर सोचने लगा।

लोगों ने कहा- "खोजता क्यों नहीं? कहाँ है तेरी सुन्दर स्त्री?"

"तो जाऊँ न सरकार?"

"हाँ, हाँ, जाता क्यों नहीं"- ठाकुर ने भी हँसकर कहा।

गोली नयी हवेली की ओर चला। वह नि:शंक भीतर चला गया। बेला बैठी हुई तन्मय भाव से बाहर की भीड़ झरोखे से देख रही थी। जब उसने गोली को समीप आते देखा, तो वह काँप उठी। कोई दासी वहाँ न थी। सब खेल देखने में लगी थीं। गोली ने पोटली फेंककर कहा- "बेला! जल्द चलो।"

बेला के हृदय में तीव्र अनुभूति जाग उठी थी। एक क्षण में उस दीन भिखारी की तरह- जो एक मुट्ठी भीख के बदले अपना समस्त सञ्चित आशीर्वाद दे देना चाहता है- वह वरदान देने के लिए प्रस्तुत हो गयी। मंत्र-मुग्ध की तरह बेला ने उस ओढ़नी का घूँघट बनाया। वह धीरे-धीरे उसके पीछे भीड़ में आ गयी। तालियाँ पिटीं। हँसी का ठहाका लगा। वही घूँघट, न खुलने वाला घूँघट सायंकालीन समीर से हिल कर रह जाता था। ठाकुर साहब हँस रहे थे। गोली दोनों हाथों से सलाम कर रहा था।

रात हो चली थी। भीड़ के बीच गोली बेला को लिये जब फाटक के बाहर पहुँचा, तब एक लड़के ने आकर कहा- "एक्का ठीक है।"

तीनों सीधे उस पर जाकर बैठ गये। एक्का वेग से चल पड़ा।

अभी ठाकुर साहब का दरबार जम रहा था और नट के खेलों की प्रशंसा हो रही थी।

ग्राम
जयशंकर प्रसाद

(1)

टन! टन! टन! स्टेशन पर घण्टी बोली।

श्रावण-मास की सन्ध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है! मेघ-माला-विभूषित गगन की छाया सघन रसाल-कानन में पड़ रही है! अंधियारी धीरे-धीरे अपना अधिकार पूर्व-गगन में जमाती हुई, सुशासनकारिणी महारानी के समान, विहंग प्रजागण को सुख-निकेतन में शयन करने की आज्ञा दे रही है। आकाशरूपी शासन-पत्र पर प्रकृति के हस्ताक्षर के समान बिजली की रेखा दिखाई पड़ती है... ग्राम्य स्टेशन पर कहीं एक-दो दीपालोक दिखाई पड़ता है। पवन हरे-हरे निकुंजों में से भ्रमण करता हुआ झिल्ली के झनकार के साथ भरी हुई झीलों में लहरों के साथ खेल रहा है। बूंदियाँ धीरे-धीरे गिर रही हैं, जो जूही की कलियों को आर्द्र करके पवन को भी शीतल कर रही हैं।

थोड़े समय में वर्षा बंद हो गई। अन्धकार-रूपी अंजन के अग्रभाग-स्थित आलोक के समान चतुर्दशी की लालिमा को लिये हुए चन्द्रदेव प्राची में हरे-हरे तरुवरों की आड़ में से अपनी किरण-प्रभा दिखाने लगे। पवन की सनसनाहट के साथ रेलगाड़ी का शब्द सुनाई पड़ने लगा। सिग्नलर ने अपना कार्य किया। घण्टा का शब्द उस हरे-भरे मैदान में गूँजने लगा। यात्री लोग अपनी गठरी बाँधते हुए स्टेशन पर पहुँचे। महादैत्य के लाल-लाल नेत्रों के समान अंजन-गिरिनिभ इंजन का अग्रस्थित रक्त-आलोक दिखाई देने लगा। पागलों के समान बड़बड़ाती हुई अपनी धुन की पक्की रेलगाड़ी स्टेशन पर पहुँच गई। धड़ाधड़ यात्री लोग उतरने-चढ़ने लगे। एक स्त्री की ओर देखकर फाटक के बाहर खड़ी हुई दो औरतें- जो उसकी सहेली मालूम देती हैं- रो रही हैं, और वह स्त्री एक मनुष्य के साथ रेल में बैठने को उद्यत है। उनकी

क्रन्दन-ध्वनि से वह स्त्री दीन-भाव से उनकी ओर देखती हुई, बिना समझे हुए, सेकंड क्लास की गाड़ी में चढ़ने लगी; पर उसमें बैठे हुए बाबू साहब- 'यह दूसरा दर्जा है, इसमें मत चढ़ो' कहते हुए उतर पड़े, और अपना हण्टर घुमाते हुए स्टेशन से बाहर होने का उद्योग करने लगे।

विलायती पिक का वृचिस पहने, बूट चढ़ाये, हण्टिंग कोट, धानी रंग का साफा, अंग्रेजी हिन्दुस्तानी का महासम्मेलन बाबू साहब के अंग पर दिखाई पड़ रहा है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट-उसकी आभा को बढ़ा रहे हैं। स्टेशन मास्टर से सामना होते ही शेकहैंड करने के उपरान्त बाबू साहब से बातचीत होने लगी।

स्टेशन मास्टर- आप इस वक्त कहाँ से आ रहे हैं?

मोहन- कारिंदों ने इलाके में बड़ा गड़बड़ मचा रखा है, इसलिये मैं कुसुमपुर- जो कि हमारा इलाका है- इंस्पेक्शन के लिए जा रहा हूँ।

स्टेशन मास्टर- फिर कब पलटियेगा?

मोहन- दो रोज में। अच्छा, गुड इवनिंग।

स्टेशन मास्टर, जो लाइन-क्लियर दे चुके थे, गुड इवनिंग करते हुए अपने ऑफिस में घुस गये।

बाबू मोहनलाल अंग्रेजी काठी से सजे हुए घोड़े पर, जो पूर्व ही स्टेशन पर खड़ा था, सवार होकर चलते हुए।

(2)

सरलस्वभावा ग्रामवासिनी कुलकामिनीगण का सुमधुर संगीत धीरे-धीरे आम्र-कानन में से निकलकर चारों ओर गूँज रहा है। अन्धकार गगन में जुगनू-तारे चमक-चमक कर चित्त को चंचल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कंधो पर रखे, बिरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ी के साथ, घर की ओर प्रत्यावर्तन कर रहे हैं।

एक विशाल तरुवर की शाखा में झूला पड़ा हुआ है, उस पर चार महिलाएँ बैठी हैं, और पचासों उसको घेरकर गाती हुई घूम रही हैं। झूले

के पेंग के साथ 'अबकी सावन सइयाँ घर रहु रे' की सुरीली पचासों कोकिल-कण्ठ से निकली हुई तान पशुगणों को भी मोहित कर रही है। बालिकाएँ स्वच्छन्द भाव से क्रीड़ा कर रही हैं। अकस्मात् अश्व के पद-शब्द ने उन सरला कामिनियों को चौंका दिया। वे सब देखती हैं, तो हमारे पूर्व-परिचित बाबू मोहनलाल घोड़े को रोककर उस पर से उतर रहे हैं। वे सब उनका भेष देखकर घबरा गयीं और आपस में कुछ इंगित करके चुप रह गयीं।

बाबू मोहनलाल ने निस्तब्धता को भंग किया, और बोले- भद्रे! यहाँ से कुसुमपुर कितनी दूर है? और किधर से जाना होगा? एक प्रौढ़ा ने सोचा कि 'भद्रे' कोई परिहास-शब्द तो नहीं है, पर वह कुछ कह न सकी, केवल एक ओर दिखाकर बोली- इहाँ से डेढ़ कोस तो बाय, इहै पैंड़वा जाई।

बाबू मोहनलाल उसी पगडंडी से चले। चलते-चलते उन्हें भ्रम हो गया, और वह अपनी छावनी का पथ छोड़कर दूसरे मार्ग से जाने लगे। मेघ घिर आये, जल वेग से बरसने लगा, अन्धकार और घना हो गया। भटकते-भटकते वह एक खेत के समीप पहुँचे; वहाँ उस हरे-भरे खेत में एक ऊँचा और बड़ा मचान था, जो कि फूस से छाया हुआ था, और समीप ही में एक छोटा-सा कच्चा मकान था।

उस मचान पर बालक और बालिकाएँ बैठी हुई कोलाहल मचा रही थीं। जल में भीगते हुए भी मोहनलाल खेत के समीप खड़े होकर उनके आनन्द-कलरव को श्रवण करने लगे।

भ्रान्त होने से उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। रात्रि अधिक बीत गयी। कहाँ ठहरें? इसी विचार में वह खड़े रहे, बूंदें कम हो गयीं। इतने में एक बालिका अपने मलिन वसन के अंचल की आड़ में दीप लिये हुए उसी मचान की ओर जाती हुई दिखाई पड़ी।

(3)

बालिका की अवस्था 15 वर्ष की है। आलोक से उसका अंग अन्धकार-घन में विद्युल्लेखा की तरह चमक रहा था। यद्यपि दरिद्रता ने उसे मलिन कर

रखा है, पर ईश्वरीय सुषमा उसके कोमल अंग पर अपना निवास किये हुए है। मोहनलाल ने घोड़ा बढ़ाकर उससे कुछ पूछना चाहा, पर संकुचित होकर ठिठक गये। परन्तु पूछने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं था। अस्तु, रूखेपन के साथ पूछा- कुसुमपुर का रास्ता किधर है?

बालिका इस भव्य मूर्ति को देखकर डरी, पर साहस के साथ बोली- मैं नहीं जानती। ऐसे सरल नेत्र-संचालन से इंगित करके उसने ये शब्द कहे कि युवक को क्रोध के स्थान में हँसी आ गयी और कहने लगा- तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ, मैं उससे पूछ लूंगा।

बालिका- हमारी माता जानती होंगी।

मोहन- इस समय तुम कहाँ जाती हो?

बालिका- (मचान की ओर दिखाकर) वहाँ जो कई लड़के हैं, उनमें से एक हमारा भाई है, उसी को खिलाने जाती हूँ।

मोहन- बालक इतनी रात को खेत में क्यों बैठा है?

बालिका- वह रात-भर और लड़कों के साथ खेत में ही रहता है।

मोहन- तुम्हारी माँ कहाँ है?

बालिका- चलिये, मैं लिवा चलती हूँ।

इतना कहकर बालिका अपने भाई के पास गयी, और उसको खिलाकर तथा उसके पास बैठे हुए लड़कों को भी कुछ देकर उसी क्षुद्र-कुटीराभिमुख गमन करने लगी। मोहनलाल उस सरला बालिका के पीछे चले।

(4)

उस क्षुद्र कुटीर में पहुँचने पर एक स्त्री मोहनलाल को दिखाई पड़ी, जिसकी अंगप्रभा स्वर्ण-तुल्य थी, तेजोमय मुख-मण्डल, तथा ईषत् उन्नत अधार अभिमान से भरे हुए थे, अवस्था उसकी 50 वर्ष से अधिक थी। मोहनलाल की आन्तरिक अवस्था, जो ग्राम्य जीवन देखने से कुछ बदल चुकी थी, उस सरल गम्भीर तेजोमय मूर्ति को देख और भी सरल विनययुक्त हो गयी। उसने झुककर प्रणाम किया। स्त्री ने आशीर्वाद दिया और पूछा- बेटा! कहाँ से आते हो?

मोहन- मैं कुसुमपुर जाता था, किन्तु रास्ता भूल गया...।

'कुसुमपुर' का नाम सुनते ही स्त्री का मुख-मण्डल आरक्तिम हो गया और उसके नेत्र से दो बूंद आँसू निकल आये। वे अश्रु करुणा के नहीं किन्तु अभिमान के थे।

मोहनलाल आश्चर्यान्वित होकर देख रहे थे। उन्होंने पूछा- आपको कुसुमपुर के नाम से क्षोभ क्यों हुआ?

स्त्री- बेटा! उसकी बड़ी कथा है, तुम सुनकर क्या करोगे?

मोहन- नहीं, मैं सुनना चाहता हूँ, यदि आप कृपा करके सुनावें।

स्त्री- अच्छा, कुछ जलपान कर लो, तब सुनाऊँगी।

पुनः बालिका की ओर देखकर स्त्री ने कहा- कुछ जल पीने को ले आओ।

आज्ञा पाते ही बालिका उस क्षुद्र गृह के एक मिट्टी के बर्तन में से कुछ वस्तु निकाल, उसे एक पात्र में घोलकर ले आयी, और मोहनलाल के सामने रख दिया। मोहनलाल उस शर्बत का पान करके फूस की चटाई पर बैठकर स्त्री की कथा सुनने लगे।

(5)

स्त्री कहने लगी- हमारे पति इस प्रान्त के गण्य भूस्वामी थे, और वंश भी हम लोगों का बहुत उच्च था। जिस गाँव का अभी आपने नाम लिया है, वही हमारे पति की प्रधान जमींदारी थी। कार्यवश कुंदनलाल नामक एक महाजन से कुछ ऋण लिया गया। कुछ भी विचार न करने से उनका बहुत रुपया बढ़ गया, और जब ऐसी अवस्था पहुँची तो अनेक उपाय करके हमारे पति धन जुटाकर उनके पास ले गये, तब उस धूर्त ने कहा- "क्या हर्ज है बाबू साहब! आप आठ रोज में आना, हम रुपया ले लेंगे, और जो घाटा होगा, उसे छोड़ देंगे, आपका इलाका फिर जायगा, इस समय रेहननामा भी नहीं मिल रहा है।" उसका विश्वास करके हमारे पति फिर बैठ रहे, और उसने कुछ भी न पूछा। उनकी उदारता के कारण वह संचित धन भी थोड़ा

हो गया, और उधर उसने दावा करके इलाका- जो कि वह ले लेना चाहता था- बहुत थोड़े रुपये में नीलाम करा लिया। फिर हमारे पति के हृदय में, उस इलाके के इस भांति निकल जाने के कारण, बहुत चोट पहुँची, और इसी से उनकी मृत्यु हो गयी। इस दशा के होने के उपरान्त हम लोग इस दूसरे गाँव में आकर रहने लगीं। यहाँ के जमींदार बहुत धर्मात्मा हैं, उन्होंने कुछ सामान्य 'कर' पर यह भूमि दी है, इसी से अब हमारी जीविका है...

इतना कहते-कहते स्त्री का गला अभिमान से भर आया और कुछ कह न सकी।

स्त्री की कथा को सुनकर मोहनलाल को बड़ा दुःख हुआ। रात विशेष बीत चुकी थी, अतः रात्रि-यापन करके, प्रभात में मलिन तथा पश्चिमगामी चन्द्र का अनुसरण करके, बताये हुए पथ से वह चले गये।

पर उनके मुख पर विषाद तथा लज्जा ने अधिकार कर लिया था। कारण यह था कि स्त्री की जमींदारी हरण करने वाले, तथा उसके प्राणप्रिय पति से उसे विच्छेद कराकर इस भांति दुःख देने वाले कुंदनलाल मोहनलाल के ही पिता थे।

सती

शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

(1)

हरीश पबना का एक संभ्रान्त और अच्छा वकील है। सिर्फ एक वकील की हैसियत से ही नहीं, एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति की हैसियत से भी शहर भर में उसकी बेहद शोहरत थी। देश के प्रायः सभी प्रकार के सदनुष्ठानों से ही किसी-न-किसी रूप में वह जुड़ा था। शहर का कोई भी अहम काम उसे छोड़कर पूरा नहीं होता था। सुबह नगर के भ्रष्टाचार निरोधक सभा की कार्यकारिणी समिति का एक विशेष अधिवेशन था, लिहाजा घर लौटने में उसे देर हो गई है। अब किसी तरह कुछ पेट में डालकर अगर अदालत पहुँच जाए तो गनीमत मानेगा। विधवा छोटी बहन उमा के पास बैठकर उसके भोजन का तत्वाधान कर रही थी कहीं देर हो जाने के कारण दादा के भोजन में कोई त्रुटि न हो जाए।

पत्नी निर्मला धीरे-धीरे कमरे में आकर थोड़ी दूर पर बैठ गई। बोली, "मैंने कल के अखबार में देखा कि हम लोगों की लावण्य प्रेमा यहाँ के बालिका विद्यालयों की इन्सपेक्ट्रेस नियुक्त होकर आ रही हैं।"

आपात दृष्टि में सहज लगने वाली इस बात के अंतराल में एक अत्यंत गंभीर इंगित छिपा था।

चकित होकर उमा ने कहा, "सच? लेकिन भाभी 'लावण्य' नाम तो बहुतों का होता है।"

निर्मला बोली, "हाँ, होता है। मैं उनसे कह रही हूँ।"

सहसा सिर उठाकर हरीश ने रुखाई से कहा, "मुझे इसकी जानकारी कैसे होगी? सरकार क्या मुझसे राय लेकर नियुक्तियां करती है?"

स्निग्ध स्वर में स्त्री ने उत्तर दिया, "ओह, नाराज क्यों होते हो? नाराज होने की तो मैंने कोई बात नहीं कही। तुम्हारी तदबीर-कोशिश से अगर

किसी का भला होता हो तो यह खुशी ही की बात है," कहकर जिस तरह वह धीर-मंथर पदक्षेप से आई थी, उसी तरह बाहर चली गयी।

उमा ने घबराकर कहा, "तुम्हें मेरी कसम दादा, मत उठो-मत उठो।"

हरीश तड़ितवेग से आसन छोड़कर उठ पड़ा। बोला, "ओफ्, शान्ति से दो कौर खा भी नहीं सकता। अब बिना आत्मघात किये छुटकारा नहीं मिलेगा।" कहते हुए बाहर निकल गया। जाते वक्त उसने अपनी पत्नी का मधुर स्वर सुना, "तुम किस दुःख से आत्मघात करोगे; दुनिया देखेगी उसे एक दिन जो करेगा।"

(2)

यहाँ हरीश का थोड़ा पूर्ववृत्तान्त का बयान आवश्यक है। अब उसकी उमर चालीस से कम नहीं है। पर जब सचमुच कम थी, उस पाठ्यावस्था के समय का एक छोटा-सा इतिहास है। उसके पिता राममोहन तब बरिशाल जिले (अब बांग्लादेश में है) वे सब-जज थे। हरीश एम.ए. परीक्षा की तैयारी के लिए कलकत्ता का मेस छोड़कर बरिशाल चला आया। पड़ोस में रहते थे हरकुमार मजुमदार, स्कूल इंसपेक्टर। सीधे-सादे, निरहंकार और प्रकाण्ड पंडित। सरकारी काम से फुरसत मिलने पर और सदर में मौजूद रहने पर बीच-बीच में आकर सदर-आला बहादुर के बैठकखाने में बैठते थे। बहुत से लोग आते थे वहाँ। खल्वाट मुंसिफ, छंटी दाढ़ी वाले डिप्टी, महास्थविर सरकारी वकील और शहर के अन्य गण-मान्य व्यक्तियों में संध्या के बाद प्रायः कोई भी वहाँ अनुपस्थित नहीं रहता था। उसका कारण था। सदर आला खुद निष्ठावान हिन्दू थे। अतएव वार्तालाप तर्क-वितर्क मुख्यतः धर्म के विषय में ही होता था और जिस तरह सर्वत्र होता है, यहाँ भी उसी तरह अध्यात्म-तत्व की शास्त्रीय मीमांसा का पर्यवसान एक खण्डयुद्ध में होता था।

उस दिन ऐसी ही एक लड़ाई के बीच हरकुमार अपनी बांस की छड़ी हाथ में लिये धीरे-धीरे अंदर आ गये। इन सब लड़ाई-झगड़ों में वे कभी

कोई हिस्सा नहीं लेते थे। या तो वे स्वयं ब्रह्मसमाज मुक्त थे इसलिये, या अपनी शान्त मौन प्रकृति के कारण, चुपचाप बैठ के सब कुछ सुनने के अलावा खुद आगे बढ़कर अपनी राय जाहिर करने की चंचलता उन्होंने कभी नहीं दिखलाई, किंतु आज बात कुछ दूसरे ढंग की हो गई। उनके कमरे में दाखिल होते ही गंजे मुंसिफ बाबू उन्हें ही मध्यस्थ मान बैठे। इसका कारण यह था कि इस बार छुट्टी में कलकत्ता जाकर वे कहीं यह सुन आये थे कि इस व्यक्ति का भारतीय दर्शन में गहरा प्रवेश है। मुस्कराकर सम्मत हो गये हरकुमार। थोड़ी ही देर में यह स्पष्ट हो गया कि प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों के अनुवाद मात्र को संबल बनाकर इनसे तर्क नहीं किया जा सकता। उनकी प्रांजल व्याख्या ने सबको संतुष्ट कर दिया, नहीं किया सिर्फ सब-जज बहादुर को। उनकी धारणा थी कि जिस व्यक्ति ने स्वयं अपनी जाति खो दी है, व्यर्थ है उसका यह शास्त्र-ज्ञान और अपने मन की बात उन्होंने जाहिर भी कर दी। सबके उठकर चले जाने के बाद उन्होंने अपने परमप्रिय सरकारी वकील साहब को आँख का इशारा करके हँसकर कहा, "सुना न आपने भादुड़ी महाशय? भूत के मुंह से राम नाम!"

भादुड़ी ने पूरी तरह उनकी हाँ-में-हाँ नहीं मिलाई। बोले, "हाँ, लेकिन जानता खूब है। लगता है सब कुछ जैसे हिफज है उसे। पहले मास्टरी करता था न।"

उनकी बात से हाकिम प्रसन्न नहीं हुए। बोले, "भाड़ में जाए यह ज्ञान। यहाँ लोग असली ज्ञान पापी हैं। इन्हें कभी मुक्ति नहीं मिलेगी।"

इस मजलिस में हरीश भी उस दिन चुपचाप एक तरफ बैठा था। इस मितभाषी प्रौढ़ के ज्ञान और पाण्डित्य को देखकर मुग्ध हो गया था। सुतरां पिता की जो भी धारणा हो उनके विषय में, पुत्र अपनी आसन्न परीक्षा की सफलता के उद्देश्य से उनकी शरण में चला गया। उसे मदद करनी पड़ेगी उन्हें। हरकुमार राजी हो गये। उनके घर उनकी पुत्री लावण्य से हरीश का परिचय हुआ। वह आई.ए. (इन्टरमीडिएट) परीक्षा की तैयारी के लिए कलकत्ता का कोलाहलमय वातावरण छोड़कर अपने पिता के पास चली आई हैं। उस दिन से प्रतिदिन के यातायात से हरीश ने केवल पाठ्यपुस्तकों के दुरूह अंशों के अर्थ को ही नहीं जाना, और भी एक जटिलतर वस्तु

के स्वरूप को भी उसने जान लिया, जो तत्व की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। पर यह बात अभी नहीं। क्रमशः परीक्षा के दिन पास आने लगे, हरीश कलकत्ता चला गया। उसने परीक्षा अच्छी तरह दी और अच्छी तरह पास भी हुआ।

कुछ समय बाद फिर जब लावण्य से मुलाकात हुई, तब हरीश ने सहानुभूतिपूर्वक पूछा, "आप फेल कैसे हो गयीं?"

लावण्य ने कहा, "क्या मैं फेल तक नहीं हो सकती? इतनी अक्षम हूँ मैं?"

हरीश हँस पड़ा, उसकी बात सुनकर। बोला, "खैर, जो हुआ सो हुआ। अब की बार ठीक से तैयारी करके इम्तहान दीजिये।"

लावण्य बिंदु मात्र लज्जित न होकर बोली, "अच्छी तरह तैयारी करके इम्तहान देने पर भी मैं फेल होऊंगी। वह मुझसे नहीं होगा।"

हरीश ने अवाक् होकर पूछा, "क्यों नहीं होगा आपसे?"

लावण्य ने कहा, "क्यों नहीं होगा? ऐसे ही नहीं होगा।" यह कहकर वह अपनी हँसी रोककर फौरन वहाँ से चली गई।

क्रमशः यह बात हरीश की माता के कानों में पहुँच गई।

उस दिन सुबह राममोहन बाबू एक मुकदमे की राय लिख रहे थे। जो बदनसीब हारा था उसे कहीं कोई बिना-सहारा न मिले, इस अपने शुभ संकल्प को कार्य रूप में परिणत करने के लिए राय के मसविदे में चुन-चुनकर शब्द-संयोजन कर रहे थे, गृहिणी के मुंह से बेटे की करतूत सुनकर उन्हें आग-सी लग गई। हरीश ने नरहत्या की है, संभवतः यह सुनने पर भी वे इतने विचलित नहीं होते। आँखें लाल करके बोले, "क्या! इतनी हिम्मत।" इससे अधिक नहीं बोल पाये थे।

दिनाजपुर रहते वक्त शिखा की उपयोगिता, गीता के सारांश और अवकाश प्राप्त करने के बाद काशीवास के सुख विषयों पर वहाँ एक पुराने वकील से उनके मत का बहुत मेल था, फलस्वरूप उनसे घनिष्ठता हो गई थी। एक छुट्टी के दिन वहाँ जाकर वकील बाबू की छोटी लड़की निर्मला को फिर एक बार देखकर लड़के की शादी का रिश्ता पक्का कर आये।

लड़की देखने में अच्छी थी। दिनाजपुर रहते वक्त गृहिणी ने उसे बहुत बार देखा था, फिर भी उन्होंने पति की बात सुनकर हैरत में आकर कहा, "कहते क्या हो जी, एकदम रिश्ता पक्का कर आये? आजकल के लड़के–"

कर्त्ता ने कहा, "पर मैं तो आजकल का बाप नहीं हूँ। मैं पुराने जमाने के नियमों से ही अपने लड़के की परवरिश कर सकता हूँ। हरीश को अगर मेरी बात पसंद न हो तो उसे अपना कोई दूसरा उपाय देखने के लिए कहना।"

गृहिणी पति को पहचानती थीं, वे स्तब्ध हो गयीं।

कर्त्ता राममोहन बाबू ने पुनः कहा, "लड़की हुस्न में परी तो जरूर नहीं है, पर भले घर की लड़की है। वह अगर अपनी माँ के सतीत्व और अपने बाप की धर्मनिष्ठा को लेके हमारे घर आ जाये, तो हरीश इसे अपना सौभाग्य ही समझे।"

इस खबर के हाजिर होने में विलंब नहीं हुआ। हरीश को भी पता चल गया इसका। पहले उसने सोचा कि भागकर वह कलकत्ता चला जाए, वहाँ और कुछ न मिले तो ट्यूशन करके ही जिन्दगी बसर करे। फिर सोचा सन्यासी बन जाएगा। अंत में, पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिताहि परमं तपः इत्यादि स्मरण करके स्थिर हो गया।

लड़की के पिता बड़े ठाठ-बाट के साथ पात्र देखने आये और उन्होंने आशीर्वाद (तिलक) की रस्म भी इसी के साथ पूरी कर दी। हाकिम बहादुर के समारोह सभा में शहर के बहुत से नामी गिरामी लोग आमंत्रित होकर आये थे, निरीह हरकुमार बिना कुछ जाने-सुने ही चले आये थे। राममोहन बाबू ने सबके समक्ष अपने भावी समधी मैत्र महाशय की हिन्दू धर्म में प्रगाढ़ निष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की, और अंग्रेजी शिक्षा के संख्यातीत दोषों का कीर्तन करके बहुत-कुछ यह अभिमत व्यक्त किया कि उन्हें हजार रुपये की नौकरी देने के अलावा अंग्रेजों में और कोई गुण नहीं है। आजकल वक्त बदल गया है इसलिये लड़कों को अंग्रेजी पढ़ाये बिना काम नहीं चलता, किंतु जो मूर्ख इस म्लेच्छ विद्या और म्लेच्छ सभ्यता को हिन्दुओं के शुद्ध अंतःपुर में स्त्रियों के बीच ले जाता है उसका न इहलोक रहता है न परलोक।

अकेले हरकुमार के अलावा इस उक्ति का निगूढ़ किसी के लिये अविदित न रहा; उस दिन सभा भंग होने से पहले ही विवाह का दिन भी निश्चित हो गया और यथासमय शुभकार्य के सम्पन्न होने में विघ्न नहीं उपस्थित हुआ। बेटी को ससुर-गृह भेजते समय निर्मला की सती साध्वी माता मैत्र गृहिणी ने वधू जीवन के चरम तत्त्व को पुत्री के कर्णगोचर किया। उन्होंने कहा, "पुरुषों को हमेशा दृष्टि के अंतर्गत रखना चाहिये, उन पर से दृष्टि हटते ही वे हाथ से बाहर निकल जाते हैं। गृहस्थी के दौरान और कोई भी बात भले ही भूल जाओ, लेकिन इस बात को कभी न भूलना बेटी।"

उनके अपने पति शिखा की उपयोगिता और गीता के सारतत्व में मशगूल होने से पहले तक उन्हें काफी दिक कर चुके थे। अब भी उनका दृढ़ विश्वास है कि जब तक मैत्र बूढ़ा चितारोहण नहीं करता तब तक वे निश्चित नहीं हो सकतीं।

(3)

निर्मला पति की गृहस्थी में आई और पिछले बीस साल से है। इस लंबे अरसे में न जाने कितने परिवर्तन हो गये, न जाने कितनी घटनायें घटीं हाकिम बहादुर की मृत्यु हो गई, स्वधर्मनिष्ठ मैत्र गतासु हो गये, लिखाई-पढ़ाई खत्म होने के बाद लावण्य की अन्यत्र शादी हो गई, जूनियर वकील हरीश सीनियर वकील बन गया, उसकी उमर यौवन पार करके प्रौढ़त्व में जा पहुँची, किंतु निर्मला मातृदत्त मंत्र को नहीं भूली।

इस सजीव मंत्र की क्रिया इतनी द्रुत आरंभ होगी इसे कोई नहीं जानता था। रायबहादुर राममोहन जीवित थे तब पेंशन लेकर पबना के अपने घर में चले आये थे। हरीश के एक वकील मित्र के पिता के श्राद्ध के अवसर पर कलकत्ता से एक अच्छी कीर्तन गाने वाली आई थी। वह देखने में अच्छी थी और उमर भी कम थी उसकी। सबकी इच्छा हुई कि श्राद्ध कर्म के बाद सब एक दिन उसका कीर्तन अच्छी तरह सुने। अगले दिन हरीश को कीर्तन सुनने का निमंत्रण मिला। कीर्तन सुनकर घर लौटने में उसे थोड़ी रात अधिक हो गई।

निर्मला ऊपर के खुले बरामदे में सड़क की ओर नजर किये खड़ी थी। पति के ऊपर आने पर उसने पूछा, "गाना कैसा लगा?"

हरीश ने खुश होकर कहा, "अच्छा गाती है।"

"देखने में कैसी है?"

"बुरी नहीं, अच्छी ही है।"

निर्मला ने कहा, "तब रात एकदम बिताकर ही आते।"

इस अप्रत्याशित कुत्सित मन्तव्य से हरीश क्रुद्ध होने के बजाय विस्मय से अभिभूत हो गया। उसके मुंह से सिर्फ यही निकला, "क्या कहती हो।"

निर्मला ने सक्रोध कहा, "ठीक ही कहती हूँ। मैं दुधमुंही बच्ची नहीं हूँ, सब जानती हूँ; सब समझती हूँ। तुम मेरी आँखों में धूल झोंकोगे? अच्छा–"

उमा पास के कमरे में से दौड़ के आकर सभीत बोली, "तुम क्या कर रही हो भाभी? पिताजी सुन लेंगे।"

निर्मला ने कहा, "सुन लेंगे तो सुन लें। मैं धीरे-धीरे तो नहीं बोल रही हूँ।"

इसके जवाब में उमा क्या कहे, समझ नहीं पायी। पर कहीं उसकी ऊँची आवाज से वृद्ध पिता की नींद न टूट जाए, इस डर के हाथ जोड़कर दबी आवाज में उसने विनती की, "भाभी शांत हो जाओ, इतनी रात को चिल्लाकर घर की बदनामी न कराओ।"

भाभी की आवाज इससे घटी नहीं, बल्कि बढ़ी ही। बोली, "कैसी बदनामी! तुम यह नहीं कहोगी ठाकुरजी। तुम्हारे भीतर तो मेरी तरह नहीं जलभुन रहा है।" कहते-कहते वह रो पड़ी और जल्दी से अपने कमरे में घुसकर उसने दरवाजे बंद कर लिये।

एक काठ के पुतले की तरह हरीश ने चुपचाप नीचे आकर मुवक्किलों के बैठने की बेंच पर सोकर बाकी रात बितायी। इसके बाद करीब दस दिन के लिये दोनों की बातचीत बंद हो गई।

पर हरीश भी फिर संध्या के बाद घर से बाहर नहीं दिखलाई पड़ा। दिखलाई पड़ने पर भी उसकी शंकाकुल व्याकुलता लोगों की उपहास की

वस्तु बन गई। दोस्त नाराज होकर कहने लगे, "हरीश, तुम जितने बूढ़े हो रहे हो, रोग भी तुम्हारा उतना ही बढ़ता चला जा रहा है?"

हरीश अक्सर कोई जवाब नहीं देता था, सिर्फ बात जब बहुत ज्यादा चुभने लगती थी तब कहता था, "इसी घृणा से यदि तुम लोग मेरा परित्याग कर दो तो तुम लोगों को भी मुक्ति मिल जाए और मुझे भी।"

दोस्त कहते, "बेकार ही हम कहने गये, उसे शर्मिंदा करते जाकर हम लोगों को खुद शर्मिंदा होना पड़ रहा है।"

चेचक के प्रकोप से उस बार बहुत तादाद में लोग मरने लगे। हरीश को भी चेचक के रोग ने पकड़ लिया। वैद्य ने आकर उसे देखा, फिर चेहरे को गंभीर बनाकर बोले, "हालत बेहद नाजुक है। बचना मुश्किल मालूम हो रहा है।"

रायबहादुर तक परलोकवासी हो गये थे। हरीश की वृद्धा माता पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ी। निर्मला ने कमरे से बाहर आके कहा, "मैं यदि सती माँ की सती बेटी होऊँ तो किसी की हिम्मत है मेरे लोहे-सिंदूर से मुझे वंचित करे! तुम लोग उन्हें देखना, मैं चलती हूँ।" यह कहकर वह शीतला माता के मंदिर में जाकर धरना देकर पड़ी रही। उसने कहा, "अगर वे जीवित रहे तो मैं घर लौटूंगी, नहीं तो यहीं से उनके साथ जाऊंगी।"

सात दिन की अवधि में देवी के चरणामृत के अलावा पानी तक कोई उसके हलक से नीचे नहीं उतार पाया।

वैद्य ने आकर कहा, "बेटी, तुम्हारे पति ठीक हो गये हैं, अब तुम घर चलो।"

लोगों की भीड़ लग गई उसे देखने के लिये। स्त्रियों ने उसके पैरों की धूल लेकर सिर पर चढ़ाई, उसके माथे पर सिंदूर का लेप किया। उन्होंने कहा, "मानवी नहीं है यह, लगता है कि साक्षात् देवी है।" वृद्धों ने कहा, "क्या सावित्री का उपाख्यान झूठा है या कलियुग से धर्म ही पूरी तरह उठ गया है? यमराज के हाथों से आखिर पति को लौटा तो लाई।"

बार-लाइब्रेरी में हरीश के दोस्त कहने लगे, "इंसान औरत का गुलाम वैसे ही नहीं हो जाता है, शादियाँ तो हमने भी की हैं, मगर औरत हो तो

ऐसी हो। अब समझ में आया कि क्यों हरीश संध्या के बाद घर के बाहर नहीं रहता था।"

वीरेन्द्र वकील भक्त व्यक्ति है, पिछले वर्ष काशी जाकर किसी सन्यासी से गुरू मंत्र ले आया है। उसने टेबिल पर जोर से हाथ मारकर कहा, "मैं जानता था कि हरीश नहीं मर सकता। सच्चा सतीत्व मामूली बात है क्या? घर से यह कहकर निकल आई कि 'यदि सती माँ की सती बेटी होऊँ तो–' ओह। बदन सिहर उठता है।"

वयोवृद्ध तारिणी चटर्जी अफीमची हैं। एक कोने में बैठ के निविष्टचित्त से हुक्का पी रहे थे, हुक्के को बैरे के हाथ में देके गहरी साँसें खींचकर बोले, "शस्त्रानुसार सहधर्मिणी होना बड़ा कठिन होता है। देखो न, मेरी सिर्फ लड़कियाँ ही सात हैं, उनकी शादी करते-करते ही दिवाला निकला जा रहा है।"

बहुत दिन बाद ठीक होकर जब फिर हरीश कचहरी गया तब न जाने कितने लोगों ने उसे अभिनंदित किया जिसका कोई शुमार नहीं।

सुखेद ब्रजेन्द्र बाबू बोले, "भाई हरीश, तुम्हें स्त्रैण कहकर बहुत मजाक उड़ाया है, माफ करना। लाख क्यों, करोड़ों में भी तुम जैसा भाग्यवान मिलना मुश्किल है, तुम धन्य हो।"

भक्त वीरेन्द्र बोला, "सीता-सावित्री की बात अगर छोड़ भी दी जाए, तो भी रवाना, लीलावती, गार्गी हमारे ही देश में पैदा हुई थीं। भाई, स्वराज-फराज जो कुछ भी कहो, किसी से कुछ नहीं होगा जब तक कि हम स्त्रियों को फिर वैसा नहीं बना पायेंगे। मैं समझता हूँ कि जल्दी ही हमें पबना शहर में एक आदर्श नारी शिक्षा समिति का गठन करना चाहिये, और जो आदर्श महिला उसकी पर्मानेन्ट प्रेसीडेन्ट बनेगी उनका नाम तो हम लोग जानते ही हैं।"

वयोवृद्ध तारिणी चटर्जी बोले, "इसी के साथ एक दहेज प्रथा-निवारणी समिति का गठन भी आवश्यक है। मुल्क बरबाद हुआ जा रहा है।"

ब्रजेन्द्र ने कहा, "हरीश, अपने कॉलेज जीवन में तो तुम अच्छा-खासा लिखा करते थे, अपनी इस आश्चर्यजनक रिकवरी (आरोग्य) के विषय में तुम्हें 'आनंद बाजार पत्रिका' में एक आर्टिकल लिखना चाहिये।"

हरीश किसी की किसी बात का भी जवाब नहीं दे पाता। कृतज्ञता से उसकी आँखें डबडबा गयीं।

मृत जमींदार गोसाईंचरण की विधवा पुत्रवधू के साथ उनके अन्य पुत्रों का जायदाद को लेकर मुकदमा शुरू हो गया था। हरीश विधवा पुत्रवधू का वकील था। जमींदार का कौन-सा कर्मचारी किधर था, यह जानना मुश्किल था; इसलिये गुप्त परामर्श के लिये विधवा खुद ही पहले दो-एक बार वकील के घर आ चुकी थीं। आज सुबह भी उनकी गाड़ी आकर हरीश के सदर दरवाजे पर रुकी। हरीश ने सम्मानपूर्वक उन्हें अपने चैम्बर में लाकर बैठाया। उनकी बातचीत पास के कमरे में मुहर्रिर न सुन ले इस अंदेशे से वे दोनों बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। विधवा के किसी बेतुके सवाल का हरीश के हँसकर जवाब देने की कोशिश करते ही करीब के कमरे के पर्दे की ओट से अकस्मात् एक तीखी आवाज आई, "मैंने सब कुछ सुन लिया है।"

विधवा चौंक पड़ी। हरीश लज्जा और शंका से काठ बन गया।

दो अति सतर्क आँखें और कान उसे अहरह पहरे के घेरे में रखे हुए हैं, इस बात को वह कुछ क्षण के लिये भूल गया था।

पर्दा ठेलकर निर्मला रणरंगिनी मूर्ति में बाहर निकल आयी। हाथ पटककर आवाज में जहर डालकर बोली, "फुसफुसा के बातें करके मुझे धोखा दोगे तुम भूलकर भी यह न सोचना। मुझसे तो कभी इस तरह हँसकर बातें नहीं करते।"

नितान्त असत्य नहीं था यह अभियोग।

विधवा ने संयत-भाव से कहा, "यह सब क्या मामला है हरीशबाबू?"

क्षणभर विमूढ़ की तरह देखकर हरीश ने कहा, "पागल है।"

निर्मला ने कहा, "पागल हूँ? पागल ही हूँ। पर किसने बनाया बताओ?" यह कहकर वह जोर-जोर से रोने लगी, फिर एकाएक घुटने टेककर विधवा के पैरों के पास माथा पटकने लगी। मुहर्रिर काम छोड़कर दौड़कर वहाँ चला आया; एक जूनियर वकील तभी आया था, वह भी दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया; बोस कंपनी का बिल-मैनेजर उसी के कंधे पर

से झांकने लगा और उन्हीं सब लोगों की आँखों के सामने निर्मला माथा पटकते-पटकते बोली, "मैं सब जानती हूँ, सब समझती हूँ। रहो, तुम्हीं लोग खुश रहो, किंतु यदि मैं सती माँ की सती बेटी होऊँ, यदि मन-विचार के सिवाय एक के कभी दो को जाना हो, यदि..."

इधर विधवा खुद भी रोने लग गयी, "यह सब क्या है हरीश बाबू। मुझे क्यों बदनाम किया जा रहा है इस तरह? यह केसी..."

हरीश ने किसी को भी कोई जवाब नहीं दिया। सिर नीचा किये केवल यही बात उसके मन में उठने लगी: "पृथ्वी, द्विधा क्यों नहीं होती?"

लज्जा-घृणा-क्रोध से हरीश उस दिन उसी कमरे में स्तब्ध होकर बैठा रहा, कचहरी जाने की बात तक नहीं सोच सका। दोपहर को उमा ने आकर बहुत मिन्नतें करके और कसम दिलाकर उसे कुछ खिला दिया। संध्या के कुछ पहले रसोइये ने एक चांदी की कटोरी में कुछ पानी लाकर उसके पैरों के पास रखा हरीश की पहले तबीयत हुई कि लात मारकर उसे फेंक दे, पर आत्म संवरण करके आज भी उसने दाहिने पैर के अंगूठे को उसमें डुबो दिया। पति के पादोदक पिये बिना निर्मला किसी दिन जल स्पर्श नहीं करती थी।

रात को बाहर के कमरे में अकेले सोये हरीश सोच रहा था कि उसके इस दुस्सह जीवन का कब अवसान होगा। इसी तरह बहुत दिन उसने बहुत-सी बातें सोची हैं, किंतु उसकी इस सती स्त्री के एकनिष्ठ पति-प्रेम के प्राणान्तर नागपाश से मुक्त होने का कोई भी पथ उसे नहीं दिखलाई पड़ा।

(4)

लगभग दो वर्ष गुजर गये हैं। निर्मला ने पता लगाकर जाना है कि अखबार की खबर झूठी नहीं है। लावण्य सचमुच ही पबना के बालिका विद्यालयों की इंस्पेक्ट्रेस बनके आ रही है।

आज हरीश ने थोड़ी जल्दी कचहरी से लौटकर छोटी बहन उमा को बताया कि रात की ट्रेन से उसे एक जरूरी काम से कलकत्ता जाना पड़ेगा

लौटने में शायद उसे चार-पाँच दिन लग जाएँ। बिस्तर और जरूरी कपड़े नौकर से ठीक-ठाक कराकर रखवा दे। यह निर्देश देकर वह बाहर वाले कमरे में चला गया।

करीब पन्द्रह दिन से पति-पत्नी में बातचीत बंद है।

रेलवे-स्टेशन दूर है– रात के आठ बजे ही मोटर से निकल जाना पड़ेगा। संध्या के बाद वह मुकदमे के जरूरी कागज-पत्र संभाल कर हैण्डबैग में रख रहा था, तभी निर्मला अंदर चली आई।

हरीश ने सिर उठाकर देखा, कुछ बोला नहीं।

निर्मला ने क्षणभर मौन रहकर पूछा, "आज कलकत्ता जा रहे हो क्या?"

हरीश ने कहा, "हाँ।"

"क्यों?"

"क्यों का क्या मतलब? मुवक्किल के काम से हाईकोर्ट में मुकदमा है।"

"चलो न, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।"

"तुम जाओगी! जाकर कहाँ रहोगी बताओ?"

निर्मला बोली, "जहाँ जगह मिले। तुम्हारे साथ पेड़ के नीचे रहने में भी मुझे कोई लज्जा नहीं होगी।"

सुनने में यह बात अच्छी है, और एक सती स्त्री के कहने योग्य भी लेकिन उसकी यह बात सुनकर हरीश के बदन में आग-सी लग गई।

उसने कहा, "तुम्हें लज्जा न आये, पर मुझे तो आयेगी। मैं बजाय पेड़ के नीचे रहने के फिलहाल किसी दोस्त के घर जाकर ठहरूंगा, तय किया है।"

निर्मला ने कहा, "तब तो और भी अच्छा हुआ। उनके घर भी तो उनकी पत्नी होंगी, बाल-बच्चे होंगे, मुझे कोई असुविधा नहीं होगी।"

हरीश ने कहा, "नहीं, यह नहीं हो सकता। बिना कोई सूचना दिये, बिना बुलाये किसी आम आदमी के घर मैं तुम्हें अपने साथ लेकर नहीं जा सकता।"

निर्मला ने कहा, "नहीं साथ लेकर जा सकते, यह मैं जानती हूँ। मेरे साथ रहने पर लावण्य के घर नहीं टिक पाओगे न।"

हरीश आग बबूला हो गया। हाथ-मुंह हिलाकर चीखकर बोला, "तुम जितनी गंदी हो उतनी ही बुरी भी। वह एक विधवा भद्र महिला है, मैं क्यों उसके घर टिकने जाऊंगा, वह भी क्यों मुझे आने के लिये कहेगी? फिर, वक्त कहाँ है मेरे पास? कलकत्ता जाकर मुवक्किल के काम से मुझे साँस तक लेने की फुरसत नहीं मिलेगी।"

"मिल जाएगी जी, मिल जायेगी।" यह कहकर निर्मला कमरे से बाहर चली गयी।

तीन दिन के बाद ही हरीश के कलकत्ता से लौट आने पर स्त्री ने कहा, "चार-पाँच दिन कह गये थे, लेकिन तीन ही दिन में कैसे लौट आये?"

हरीश बोला, "काम खत्म हो गया, चला आया।"

निर्मला ने जबरदस्ती हँसकर पूछा, "शायद लावण्य से मुलाकात नहीं हुई?"

हरीश ने कहा, "नहीं।"

निर्मला ने बेहद भलमनसाहती दिखाते हुए पूछा, "कलकत्ता जब गये ही, एक बार जाके खबर क्यों नहीं ले आये?"

हरीश ने जवाब दिया, "वक्त नहीं मिला।"

"इतने पास गये, थोड़ा वक्त निकाल लेते," यह कहकर वह चली गयी।

इसके करीब महीने भर बाद, एक दिन कचहरी जाते वक्त हरीश ने बहन को बुलाकर कहा, "आज मुझे लौटने में शायद थोड़ी रात हो जाएगी उमा।"

"क्यों दादा?"

उमा पास ही थी, धीरे बोलने से ही काम चल जाता, पर अपनी आवाज को ऊँची करके किसी अदृश्य व्यक्ति के उद्देश्य से हरीश ने उत्तर दिया, "योगीन बाबू के घर कुछ जरूरी सलाह-मशवरा के लिये जाना है, आने में देर हो सकती है।"

लौटने में वाकई देर हो गई। करीब रात के बारह बज गये। हरीश मोटर से उतरकर बाहर वाले कमरे में चला गया। कपड़े बदलते-बदलते उसने

ऊपर की खिड़की से स्त्री को शोफर से यह पूछते हुए सुना, "अब्दुल, योगीन बाबू के घर से आ रहे हो न?"

अब्दुल ने कहा, "नहीं माईजी, स्टेशन से आ रहे हैं।"

"स्टेशन से? स्टेशन से क्यों? गाड़ी से कोई आया है शायद?"

अब्दुल ने बताया, "कलकत्ता से एक माई जी आयी हैं, एक बच्चे के साथ।"

"कलकत्ता से? बाबूजी उन्हें लाकर डेरे में पहुँचा आये हैं शायद?"

अब्दुल 'हाँ' कहकर गाड़ी गैरेज में ले गया।

कमरे के भीतर हरीश जड़वत् खड़ा रहा। ऐसी संभावना की बात उसके मन में न आई हो, ऐसी बात नहीं, पर वह अपने नौकर से झूठ बोलने का अनुरोध किसी तरह नहीं कर सका।

सोने के कमरे में उस दिन रात को कुरूक्षेत्र की पुनरावृत्ति हो गयी।

अगले दिन सुबह ही लावण्य लड़के को साथ लेकर इस मकान में हाजिर हो गई। बाहर के कमरे में था तब हरीश। उससे बोली, "आपकी स्त्री से मेरा परिचय नहीं है। चलिये, परिचय करा दीजिये।"

हरीश की छाती में धड़कन होने लगी। एक बार उसने यह कहकर भी टालना चाहा कि वह बहुत व्यस्त है, लेकिन वह उज्र टिक नहीं पाया। उसे साथ लाकर स्त्री से परिचय कराना पड़ा।

लगभग दस साल का एक लड़का और लावण्य। निर्मला ने बड़े आदर से उनका स्वागत किया। लड़के को खाने को मिठाई दी और उसकी माँ को आसन बिछाकर यत्नपूर्वक बैठाया। बोली, "मेरा सौभाग्य है कि आपसे मुलाकात कर सकी।"

लावण्य ने इसके उत्तर में कहा, "हरीशबाबू से मैंने सुना है कि आपने लगातार वार-व्रत और उपवास करके अपनी सेहत को खराब कर डाला है। इस वक्त भी मुझे आपकी सेहत ठीक नहीं लग रही है।"

निर्मला ने हँसकर कहा, "बढ़ा-चढ़ा के कही गयी है बात, लेकिन यह बात आखिर उन्होंने कब कही आपसे?"

हरीश उस वक्त वहीं खड़ा था, उसका चेहरा एकदम फक पड़ गया।

लावण्य ने कहा, "इस बार कलकत्ता में। खाने पर बैठकर केवल आप ही की बात करते थे। उनके मित्र कुशलबाबू के घर के बहुत पास ही है न हम लोगों का घर। छत पर से चिल्लाकर पुकारने से आवाज सुनाई पड़ जाती है उस घर में।"

निर्मला ने कहा, "थोड़ी सुविधा है।"

लावण्य ने हँसकर कहा, "पर सिर्फ इसी से काम नहीं बनता था, लड़के को भेजकर पकड़ के लाना पड़ता था।"

"अच्छा!"

लावण्य बोली, "फिर, जाति और छुआ-छूत का भी बहुत ख्याल है। ब्राह्मणों का छुआ तक नहीं खाते- मेरी बुआजी के हाथ तक का भी नहीं। मुझे ही खुद सब कुछ पकाकर परोसना पड़ता था।" यह कहकर वह मुस्कराते हुए कौतुकपूर्ण दृष्टि से हरीश की ओर देखकर बोली, "अच्छा, इसमें आपकी क्या लॉजिक है, बताइये तो? मैं क्या ब्राह्मसमाज से बाहर हूँ?"

हरीश का तमाम बदन सन्न पड़ गया। उसका झूठ प्रमाणित हो जाने पर उसे लगा कि शायद इतने दिन बाद माता वसुंधरा अवश्य उस पर दया करके उसे अपने जठर में खींच लेंगी। पर सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि आज निर्मला ने कोई भयंकर पागलपन का काम नहीं किया, बिलकुल शान्त बनी रही। संशय की वस्तु ने अविसंवादी सत्य के रूप में प्रकट होकर संभवतः उसे हतचेतन बना दिया था।

हरीश बाहर आकर स्तब्ध भाव से और फीका चेहरा किये बैठा रहा। इस भीषण संभावना की बात को स्मरण करके लावण्य को पहले से ही सतर्क कर देने की जुगत बहुत बार उसके मन में आयी थी, पर वह इस नितान्त अपमानजनक तथा मर्यादाहीन दुराव-छिपाव के प्रस्ताव को किसी तरह भी इस शिक्षित और भद्र महिला के समक्ष नहीं उपस्थित कर पाया।

लावण्य के चले जाते ही निर्मला ने आंधी की तरह कमरे में घुसकर कहा, "छीः, तुम इतने झूठे हो। इतना झूठ बोलते हो।"

आँखें लाल करके झट से खड़े होकर हरीश ने कहा, "हाँ बोलता हूँ। मेरी खुशी।"

क्षणभर निर्मला पति के चेहरे की ओर चुपचाप देखती रही, फिर रोने लगी। "बोलो, जितनी इच्छा हो झूठ बोलो, जितनी खुशी हो मुझे धोखा दो। पर धर्म अगर हो, अगर मैं सती माँ की बेटी होऊँ, अगर काय-मन से सती होऊँ, तो मेरे लिये एक दिन तुम्हें जरूर रोना पड़ेगा, पड़ेगा, पड़ेगा।" यह कहकर वह जिस तरह आयी थी उसी तरह द्रुत वेग से कमरे से बाहर चली गयी।

बातचीत पहले से ही बंद चली आ रही थी, अब वह दृढ़तर हो गयी– बस इतना ही हुआ। नीचे के कमरे में ही होता था उसका शयन और भोजन। हर रोज कचहरी जाता है और आता है, बाहर वाले कमरे में बैठकर अपना वक्त काटता है– इसमें नया कुछ भी नहीं है। पहले संध्या के समय एक बार क्लब में जाकर बैठता था, अब वह भी बंद हो गया है। कारण, शहर के उसी ओर लावण्य का डेरा है। उसे लगता था कि पतिप्राणाचार्या की दो आँखें बनकर दसों दिशाओं से अहरह पति का निरीक्षण कर रही हैं यह निरीक्षण विरामहीन, विश्रामहीन और मध्याकर्षण की तरह नित्य है। स्नान के बाद दर्पण की ओर देखकर उसके मन में यह बात आती थी कि सती-साध्वी की इस अक्षय प्रेम की आग में उसके कलुषित देह के नश्वर मेद-मज्जा-मांस शुष्क और निष्पाप होकर बहुत तेजी से उच्चतर लोक के लिये तैयार हो रहे हैं। उसकी पुस्तकों की अलमारी में एक कालीसिंह रचित महाभारत ग्रंथ था। वक्त कटना जब भारी हो जाता था तब वह उसमें से चुन-चुनकर सती नारियों के उपाख्यान पढ़ा करता था। बड़ी अद्‌भुत कहानियां होती थीं यह। पति पापी-तापी जो भी क्यों न हो, केवल स्त्री के सतीत्व के बल से ही पूर्णतया वह पापमुक्त होकर कल्पकाल तक अपनी पत्नी के साथ रहता है। कल्पकाल की सही अवधि कितनी होती है, हरीश नहीं जानता, किंतु वह अवधि कम नहीं होती, और मुनि-ऋषियों द्वारा लिखित शास्त्रों के वाक्य भी मिथ्या नहीं हो सकते, इन बातों के बारे में सोचकर उसका सारा शरीर निस्पंद हो जाता था। परलोक के भरोसे का परित्याग करके वह बिस्तर पर पड़े-पड़े बीच-बीच में इहलोक की ही बात सोचा करता था। पर कोई रास्ता नहीं मिलता था उसे। साहब लोगों में ऐसी बात हो जाती तो मामला-मुकदमा खड़ा करके अब तक कोई न

कोई छुटकारे का रास्ता निकल आता। अगर मुसलमानों में होता तो तीन बार 'तलाक' शब्द का उच्चारण करके बहुत पहले ही मुक्ति मिल जाती, किंतु निरीह, एक पत्नीव्रत वाला भद्र बंगाली (हिंदू) है वह– नहीं, कोई उपाय नहीं उसके लिये। अंग्रेजी शिक्षा से बहुविवाद समाप्त हो गया है, विशेषतया निर्मला, चन्द्र-सूर्य जिसका मुंह नहीं देख पाते, बड़े से बड़ा शत्रु भी जिसके सतीत्व पर अणुमात्र कलंक नहीं लगा सकता, वस्तुतः पति के सिवाय जिसका और कोई ध्यान-ज्ञान नहीं, उसी का परित्याग! बाप रे! निर्मल, निष्कलुष हिन्दू समाज में फिर क्या मुंह दिखा पाएगा? देश के लोग शायद तब उसे जिन्दा ही निगल जायेंगे।

सोचते-सोचते उसके आँख-कान गरम हो जाते, बिस्तर छोड़कर वह सिर और चेहरे पर पानी के छींटे देकर, बाकी रात कुर्सी पर बैठकर ही बिता देता था।

(5)

इस तरह शायद महीने भर से ऊपर का वक्त बीत चुका था, हरीश कचहरी जा रहा था, नौकरानी ने आकर एक चिट्ठी उसके हाथ में दी। बोली, "जवाब के लिये आदमी खड़ा है।"

लिफाफा फटा था, ऊपर लावण्य के हाथ की लिखावट थी। हरीश ने पूछा, "मेरी चिट्ठी किसने खोली?"

नौकरानी ने कहा, "माँ जी ने।"

हरीश ने चिट्ठी पढ़ के देखा कि बहुत दुःखी लावण्य ने लिखा है; "उस दिन अपनी आँखों मुझे आप बीमार देख गये थे, मगर फिर आपने एक भी बार मेरी कोई खबर नहीं ली कि मैं जिंदा हूँ या मर गयी। जबकि आप इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि इस विदेश में सिवाय आपके मेरा अपना आदमी और कोई नहीं है। जो हो, इस बार मैं नहीं मरी, जिन्दा हूँ। लेकिन यह पत्र उस शिकायत के लिये नहीं है। आज मेरे लड़के का जन्मदिन है, कचहरी से लौटते वक्त एक बार आकर उसे आर्शीवाद दे जाएँ, यही भिक्षा है। लावण्य।"

पत्र के अंत में 'पुनश्च' द्वारा उसने यह अवगत कराया है कि रात का भोजन उसे वहीं करना पड़ेगा। थोड़ा गाने-बजाने का भी आयोजन है।

चिट्ठी पढ़कर शायद वह थोड़ा अन्यमनस्क हो गया था। एकाएक सिर उठाते ही उसने देखा कि हँसी छिपाने की गरज से नौकरानी ने अपना मुंह नीचा कर लिया। इसका मतलब यह हुआ कि घर के नौकर-नौकरानियों के लिये भी वह हँसी का सामान बन गया है। तत्क्षण उसकी शिराओं में खून खौलने लगा– क्या इसकी कोई इन्तिहा नहीं है? जितना सह रहा हूँ उतना ही अत्याचार बढ़ता चला जा रहा है!

उसने पूछा, "चिट्ठी कौन लाया है?"

"उनके घर की नौकरानी।"

हरीश ने कहा, "उससे कह दो कि मैं कचहरी से लौटती बेर आऊंगा।"

यह कहकर वह छाती फुलाकर मोटर में जाकर बैठ गया।

उस रात को घर लौटने में हरीश को वाकई बहुत रात हो गई। गाड़ी से उतरते ही उसने देखा कि उसके ऊपर के सोने के कमरे की खुली खिड़की में निर्मला एक पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध बनी खड़ी है।

चिकित्सकों का दल थोड़ी ही देर पहले चला गया है। पारिवारिक चिकित्सक वृद्ध ज्ञान बाबू जाते समय बोले, "लगता है सारी अफीम निकल गयी है। बहू के जीवन की और कोई शंका नहीं है।"

हरीश ने थोड़ा सिर हिलाकर कौन-सा भाव व्यक्त करना चाहा, वृद्ध ने उसे समझने की कोशिश नहीं की। बोले, "जो होना था हो गया, अब कई दिन करीब रहकर सावधानी से देखभाल करने पर यह संकट दूर हो जायेगा।"

"जी" कहकर हरीश स्थिर होकर बैठ गया।

उस दिन बार-लाइब्रेरी में बड़ी तीखी और कठोर आलोचना आरंभ हो गई। भक्त वीरेन्द्र बोला, "मेरे गुरूदेव स्वामीजी कहते हैं, 'वीरेन्द्र, आदमी का विश्वास कभी न करना।' उस दिन गोंसाई बाबू, की विधवा पुत्रवधू के विषय में जो स्कैण्डल फैला था तुम लोगों ने उसे यकीन नहीं किया था, कहा था कि हरीश ऐसा काम नहीं कर सकता। अब देख लिया न?

गुरूदेव की कृपा से मैं ऐसी बहुत-सी बातें जान लेता हूँ जिन्हें तुम लोग ड्रीम भी नहीं कर सकते।"

ब्रजेन्द्र बोला, "हरीश कितना बड़ा स्काउन्ड्रल है। ऐसी सती-साध्वी स्त्री है उसकी, पर मजा यह है कि दुनिया में बदमाशों को ही ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं।"

वृद्ध तारिणी चटर्जी हुक्का हाथ में लिये ऊंघ रहे थे, बोले, "बेशक मेरे तो बाल पक गये, लेकिन कैरेक्टर में कभी कोई स्पॉट (धब्बा) नहीं लगा पाया। अथच मेरी ही हुई सात लड़कियाँ, जिनकी शादी करते-करते मेरा दिवाला निकला जा रहा है।"

योगेन बाबू बोले, "हम लोगों के बालिका विद्यालय की निरीक्षिका लावण्य प्रभा, देखता हूँ एक आदर्श महिला हैं। हमें गवरमेंट में मूव करना चाहिये।"

भक्त वीरेन्द्र बोला, "हाँ, यह बहुत जरूरी है।"

पूरा एक दिन भी नहीं बीता, पर इसी बीच ऐसी साध्वी के पति हरीश के चरित्र के विषय में शहर का हर एक व्यक्ति जान गया और सुहृदयवर्ग की कृपा से सब बातें उसके कानों में भी पहुँच गयीं।

(6)

एक दिन उमा ने आकर आँखें पोंछते हुए कहा, "दादा, तुम फिर शादी कर डालो।"

हरीश ने कहा, "पागल हो गई हो क्या।"

उमा ने कहा, "पागल क्यों होऊंगी? हमारे देश में तो पुरुषों में बहुविवाह की प्रथा थी।"

हरीश बोला, "तब हम लोग बर्बर थे।"

उमा जिद करके बोली, "बर्बर किसलिये? तुम्हारी तकलीफ को और कोई न समझे, मैं तो समझती हूँ। तमाम जिन्दगी क्या तुम इसी तरह बर्बाद करोगे?"

हरीश बोला, "और क्या चारा है बहन? एक स्त्री का परित्याग करके पुनः विवाह की व्यवस्था पुरुषों के लिये है– जानता हूँ, पर स्त्रियों के लिये तो नहीं है यह व्यवस्था। तेरी भाभी के लिये भी यदि यह पथ खुला रहता तो तेरी बात मैं मान लेता, उमा।"

"तुम कैसी बेसिर-पैर की बातें करते हो दादा।" यह कहकर उमा नाराज होकर चली गई। हरीश चुपचाप अकेला बैठा रहा। उसके उपायहीन अंधकार चित्ततल से केवल एक ही बात बारंबार उठने लगी; पथ नहीं है! पथ नहीं है। उसके इस आनंदहीन जीवन में दुःख ध्रुव बनकर रह गया।

उसके बैठने के कमरे में तब संध्या की छाया गाढ़ी बनती जा रही थी, सहसा उसने सुना, पास के मकान के दरवाजे पर खड़े हो के वैष्णव भिखारियों का दल कीर्तन के सुर में दूती का विलाप गा रहा है। दूती मथुरा में आकर ब्रजनाथ की हृदयहीन निष्ठुरता का ब्यौरा देती हुई शिकायत कर रही है। तब इस अभियोग का दूती को क्या उत्तर मिला था हरीश नहीं जानता है, किंतु इस युग में ब्रजनाथ के पक्ष में बिना पैसे का वकील खड़ा करके वह दलील-पर-दलील जुटा कर मन-ही-मन कहने लगा।

"अरी दूती, नारी का एकनिष्ठ प्रेम बेशक बड़ी अच्छी चीज है, दुनिया में उसकी और कोई दूसरी मिसाल नहीं, किंतु तुम तो कहने पर भी सब बातें नहीं समझोगी। पर मैं जानता हूँ, ब्रजनाथ किस भय से ब्रज छोड़कर भाग गये थे, और सौ साल के भीतर उधर नहीं गये। कंस-वंस सब झूठ है। असल बात है श्रीराधा का वह एकनिष्ठ प्रेम।" थोड़ा रुककर फिर उसने कहना शुरू किया: "तो भी उन दिनों अनेक सुविधाएँ थीं मथुरा में छिपकर रहा जा सकता था। पर यह बड़ा कठिन युग है। न कोई भाग जाने की जगह है, न मुंह दिखाने की जगह है। अब भुक्तभोगी ब्रजनाथ यदि दया करके इस अधीन को थोड़ा शीघ्र श्रीचरणों में स्थान दे दें तो मैं बच जाऊँ।"

अनुराधा

शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

(1)

विवाह-योग्य लड़की की उम्र के विषय में जितना झूठ चलाया जा सकता है, उतना कहने के बावजूद उसकी सीमा लांघी जा चुकी है। ब्याह होने की आशा भी समाप्त हो गयी। 'भैया री, यह कैसी बात!' से शुरू करके आँख मिचकाकर लड़की के लड़के-वालों की गिनती पूछने तक में भी अब किसी को रस नहीं मिलता, समाज में यह मज़ाक भी बेकार-सा समझा जाने लगा है। ऐसी दशा है बेचारी अनुराधा की। जबकि घटना कोई पुराने जमाने की नहीं बल्कि आधुनिक युग की है। ऐसे जमाने में भी सिर्फ गण-ग्रह, जन्म-कुण्डली और कुल-शील की जाँच-पड़ताल करते-करते ऐसा हुआ कि अनुराधा तेईस की उम्र पार कर चुकी थी, फिर भी उसके लिए वर नहीं मिला, इस बात पर चट से विश्वास नहीं होता, फिर भी घटना बिलकुल सच है।

आज सवेरे गाँव के जमींदार की कचहरी में इस बात की चर्चा हो रही थी। नये जमींदार का नाम है। हरिहर घोषाल, कलकत्ता के रहने वाले हैं उनका छोटा लड़का विजय गाँव देखने आया है।

विजय ने मुंह का चुरुट नीचे रखकर पूछा, "क्या कहा गगन चटर्जी की बहन ने? मकान नहीं छोड़ेगी?"

जो आदमी खबर लाया था, उसने कहा, "कहा कि जो कुछ कहना है, सो छोटे बाबू आयेंगे तब उन्हीं से कहूंगी।"

विजय ने क्रोधित होकर कहा, "उसे कहना क्या है? इसके माने यह हुआ कि उन लोगों को निकाल बाहर करने के लिए खुद मुझे जाना पड़ेगा? आदमियों से काम न होगा?"

वह व्यक्ति चुप रहा, विजय ने फिर कहा, "कहने-सुनने की इसमें कोई बात नहीं, विनोद- मैं कुछ भी नहीं सुनने का। फिर भी इसके लिए

मुझे ही जाना होगा उसके पास? वह खुद आकर अपनी तकलीफ बयान नहीं कर सकती?"

विनोद ने कहा, "मैंने भी यह कहा था। अनुराधा ने कहा कि मैं भद्र घराने की लड़की हूँ विनोद भइया, घर छोड़कर अगर बाहर निकल ही जाना है तो उन्हें जताकर एकबारगी ही निकल जाऊंगी। बार-बार बाहर नहीं निकल सकती।"

"क्या नाम बताया तुमने– अनुराधा? नाम तो बड़ा बढ़िया है, इसी के शायद अभी तक अहंकार नहीं मिटा?"

"जी नहीं।"

विनोद गाँव का आदमी है, अनुराधा की दुर्दशा का इतिहास वही बता रहा था। परंतु अनतिपूर्ण इतिहास का भी एक अतिपूर्व इतिहास होता है, उसका उल्लेख कर रहा हूँ।

गाँव का नाम है गणेशपुर। कभी यह अनुराधा के पुरखों का ही था। पाँच-छः साल हुए, दूसरों के हाथ चला गया है। इस जायदाद का सालाना मुनाफा दो हज़ार से ज्यादा नहीं है, किंतु अनुराधा के पिता अमर चटर्जी का चाल-चलन या रहन-सहन था बीस हज़ार जैसा। अतएव कर्ज के कारण रहने के मकान तक पर डिक्री हो गयी। डिक्री तो हो गयी पर वह जारी नहीं हो सकी। महाजन डर के मारे रुका रहा। चट्टोपाध्यायजी जैसे बड़े कुलीन थे, वैसे ही उनके जप-तप और क्रियाकर्म की भी काफी प्रसिद्धि थी। पेंदी में छेद वाली गृहस्थी की नाव अपव्यय के खारे पानी से मुंह तक भरी आयी, पर डूबी नहीं। हिन्दू कट्टरता के फूले हुए पाल में सर्वसाधारण की भक्ति और श्रद्धा की आंधी की-सी हवा ने इस डूबती हुई नाव को ढकेलते-ढकेलते आखिर अमर चटर्जी की आयु की सीमा तो पार कर ही दी। एक तरह से उनका जीवनकाल अच्छा ही बीता। वे मरे भी ठाट-बाट के साथ उनकी श्राद्ध-शांति भी ठाट-बाट के साथ हुई, मगर साथ ही जायदाद का खातमा भी यहीं हो गया। इतने दिनों तक जो नाव सिर्फ नाक बाहर निकाले किसी कदर साँस ले रही थी, अब उसे 'बाबू घराने' की सारी इज्जत-आबरु लेकर अथाह पानी में डूबने में ज़रा भी देर न लगी।

पिता की मृत्यु के बाद पुत्र गगन को मिला— एक टूटा-फूटा पुराना डिक्री-शुदा पैतृक मकान। गले तक कर्ज से जकड़ी हुई गाँव की सम्पत्ति मिली, कुछ गाय-बकरी कुत्ते-बिल्ली आदि जानवर मिले। साथ ही सिर पर आ पड़ी पिता की दूसरी पत्नी की कुँवारी कन्या अनुराधा।

उसके लिए वर भी जुट गया, गाँव का ही एक भद्र पुरुष पाँच-छः लड़के-वाले और नाती-पोते छोड़कर उसकी स्त्री मर चुकी है, अब वह ब्याह करना चाहता है।

अनुराधा ने कहा, "भइया, भाग्य में राजपुत्र तो है नहीं, तुम उसी से मुझे ब्याह दो। रुपये वाला आदमी ठहरा, कम-से-कम खाने-पहनने को तो मिलता रहेगा।"

गगन ने आश्चर्य के साथ कहा, "यह कैसी बात है। माना कि त्रिलोचन के पास पैसा है, मगर उसके बाबा ने कुल बिगाड़कर सतीपुर के चक्रवर्तियों के घर ब्याह किया था, जानती है? उनका है क्या?"

बहन ने कहा, "और कुछ हो या न हो, रुपये तो हैं। वंश लेकर उपवास करने की अपेक्षा मुट्ठी-भर दाल-भात मिल जाना कहीं अच्छा है, भइया।"

गगन ने सिर हिलाते हुए कहा, "ऐसा नहीं होता, हो नहीं सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता, बताओ तो? बाबूजी इन सब बातों को मानते थे, मगर तुम्हारे तो इसकी कोई बला ही नहीं है।"

यहाँ यह कह देना जरूरी है कि पिता वाली कट्टरता पुत्र में नहीं है। मद्य-मांस तथा और भी आनुषंगिक विषयों में वह बिलकुल मोह-मुक्त पुरुष है। पत्नी-वियोग के बाद दूसरे गाँव की कोई एक नीच जाति की स्त्री आज भी उसका वह अभाव दूर कर रही है और इस बात को सभी जानते हैं।

गगन उसके इशारे को समझ गया, गरजकर बोला, "मुझमें फिजूल की कट्टरता नहीं, पर कन्यागत कुल के शास्त्राचार को क्या तेरे लिए तिलांजलि देकर अपनी चौदह पीढ़ियों को नरक में डुबो दूँ? कृष्ण की सन्तान हैं हम, स्वभाव-कुलीन, जा-जा, ऐसी गंदी बातें अब कभी मुंह से न निकालना।" यह कहकर वह क्रोधित होकर चला गया। त्रिलोचन गंगोपाध्याय का प्रस्ताव यहीं दब गया।

गगन ने हरिहर घोषाल की शरण ली, कुलीन ब्राह्मण को ऋणमुक्त करना ही होगा। कलकत्ता में लकड़ी के व्यापार में हरिहर लखपति धनी हो गये हैं। किसी दिन उनकी ननिहाल इसी गाँव में थी, बचपन में इन बाबुओं के सुदिन उन्होंने अपनी आँखों से देखे हैं, बहुत-से मौकों पर उन्होंने पेट भर के पूड़ी-मिठाइयाँ भी खायी हैं। रुपया उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं; इसलिए वे राजी हो गये। चटर्जियों का सब-का-सब ऋण चुकाकर हरिहर ने गणेशपुर खरीद लिया और कुण्डुओं को डिक्री का रुपया देकर रहने का मकान वापस ले लिया! सिर्फ मौखिक शर्त यह रही कि बाहर के दो-तीन कमरे कचहरी के लिए छोड़कर भीतर की तरफ गगन जैसे रहता है, उसी तरह रहा करेगा।

(2)

जमींदारी खरीद ली गयी, पर प्रजा ने अधीनता माननी नहीं चाही! जायदाद थोड़ी है, वसूली भी मामूली है, इसलिए बड़े पैमाने में कोई इंतजाम किया नहीं जा सकता; मगर इस थोड़ी में ही गगन ऐसा कौशल करने लगा कि हरिहर के पक्ष का कोई भी कर्मचारी जाकर गणेशपुर में न टिक सका। अंत में गगन अपने प्रस्ताव के अनुसार आप ही कर्मचारी नियुक्त हो गया। अर्थात् भूतपूर्व भूस्वामी वर्तमान जमींदार का गुमाश्ता बन गया। उसने प्रजा को वश में कर लिया, हरिहर ने संतोष की साँस ली, परंतु वसूली की दिशा में वही रफ्तार रही जो पहले थी। एक पैसा रोकड़ में जमा नहीं हुआ। इसी तरह गड़बड़ी में और भी दो साल बीत गये। उसके बाद अचानक एक दिन खबर मिली कि गुमाश्ता गगन चटर्जी का पता नहीं लग रहा है। शहर से हरिहर के आदमी ने आकर सब जाँच-पड़ताल करके मालूम किया कि वसूल जो कुछ हो सकता था, हुआ है, और उसे गगन चटर्जी आत्मसात करके लापता हो गया है। थाने में डायरी, अदालत में नालिश और खानातलाशी, जो कुछ भी कार्रवाई होनी चाहिए थी, वह सब की गयी, मगर रुपया और गगन दोनों में से किसी का भी पता न चला। गगन की बहन अनुराधा और उसका दूर के नाते का एक भानजा घर में रहता था। पुलिस के आदमियों ने इन दोनों

को यथा नियम खूब कसा और हिलाया-डुलाया, पर कोई तथ्य न निकला।

विजय विलायत हो आया है। उसके बार-बार परीक्षा फेल करने से हरिहर को उसकी रसद के लिए बहुत रुपये खर्च करने पड़े हैं। पास वह नहीं कर सका, पर विज्ञता के फल-स्वरूप मिजाज गरम करके दो साल पहले ही देश लौटा है। विजय का कहना है कि विलायत में पास-फेल में कोई प्रभेद नहीं। किताबें रटकर तो गधा भी पास हो सकता है। वैसा उद्देश्य होता तो वह यहीं बैठकर किताबें रटा करता, विलायत नहीं जाता। घर आकर उसने पिता के लकड़ी के व्यापार की काल्पनिक दुरावस्था की आशंका प्रकट की और डगमगाते व्यापार को मैनेज करने में लग गया। कर्मचारियों में इसी दरम्यान उसका नाम हो गया है, मुनीम-गुमाश्ते उससे शेर की तरह डरते हैं। काम के मारे जबकि उसे साँस लेने की भी फुरसत नहीं थी; तब गणेशपुर का विवरण उसके सामने आ पहुँचा। उसने कहा– यह तो जानी हुई बात है। पिताजी जो कुछ करेंगे, सो ऐसा ही होगा। मगर और कोई उपाय नहीं, लापरवाही करने से काम नहीं चलने का। उसे सरे-जमीन खुद ही जाकर कोई इंतजाम करना पड़ेगा, इसीलिए वह गणेशपुर आया है। मगर इस छोटे-से काम के लिए ज्यादा दिन गाँव में नहीं रहा जा सकता, जितना जल्दी हो सके, इसका कोई इंतजाम करके उसे कलकत्ता लौट जाना है। सब कुछ उसके अकेले के ही सिर है। बड़े भाई अजय अटर्नी हैं– अत्यंत स्वार्थी, अपने ऑफिस और स्त्री-पुरुषों को लेकर व्यस्त रहते हैं– गृहस्थी की सभी बातों में अंधे हैं, बस हिस्सा-बंटवारे के बारे में ही उनकी दस-दस आँखें काम करती हैं। उनकी स्त्री प्रभामयी कलकत्ता यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट है, घरवालों की खबर-सुध लेना तो दूर रहा, सास-ससुर जिन्दा हैं, या नहीं, इतनी खबर रखने की भी उन्हें फुरसत नहीं। पाँच-छः कमरे लेकर मकान के जिस हिस्से में वे रहते हैं, वहाँ परिवार के लोगों का जाना-आना संकुचित है। उनके नौकर-चाकर अलग हैं, उड़िया बैरा है, केवल बड़े बाबू की मनाही होने से आज तक वे मुसलमान बावर्ची नहीं रख सके हैं। यह कमी प्रभा को कष्ट पहुँचाती है। पर उसे आशा है कि ससुर के मरते ही इसका प्रतिकार हो जायेगा। देवर विजय के प्रति उसकी हमेशा से अवज्ञा रहती आयी है, सिर्फ इधर कुछ दिनों से विलायत घूम आने से उसके मनोभाव

में कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगा है। दो-चार दिन उसने न्यौता देकर उसे अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलाया है और उस मौके पर अपनी बहन अनीता से विजय का परिचय भी करा दिया है। वह इस बार बी.ए. ऑनर्स पास करके एम.ए. में पढ़ने की तैयारियाँ कर रही है।

विजय विधुर है। स्त्री मर जाने के बाद ही वह विलायत चला गया था। वहाँ क्या किया, क्या नहीं किया, इसकी खोज करने की जरूरत नहीं; पर लौटने के बाद बहुत दिनों तक देखा गया है कि स्त्री-जाति के संबंध में उसका मिजाज कुछ रूखा-रूखा-सा रहता है। माँ ने ब्याह करने के लिए कहा तो उसने तेज गले से प्रतिवाद करके उन्हें ठंडा कर दिया, तब से आज तक वह मामला गोलमान में ही है।

गणेशपुर आकर उसने एक प्रजा के मकान में बाहर के दो कमरे लेकर उनमें नयी कचहरी कायम कर दी है। सरिश्ते के कागजात जितने भी गगन के घर मिल सके, सब जबरदस्ती यहाँ उठा लाये गये हैं। अब इस बात की कोशिश हो रही है कि उसकी बहन अनुराधा और उसके दूर के नाते का बहनौत घर से निकाल बाहर किया जाए। विनोद घोष के साथ अभी-अभी इसी बात की सलाह हो रही थी।

(3)

कलकत्ता से यहाँ आते समय विजय अपने सात-आठ साल के लड़के कुमार को साथ लेता आया है।

गंवई-गाँव में साँप-बिच्छू आदि के डर से माँ ने आपत्ति की थी, पर विजय ने कह दिया कि माँ, तुम्हारी बड़ी बहू के प्रसाद से तुम्हारे गोबर-गणेश पोते-पोतियों की कमी नहीं है, कम-से-कम इसे वैसा मत बनाओ। इसे आपद-विपद में पड़कर आदमी बनने दो।

सुनते हैं कि विलायत के साहब लोग भी ठीक ऐसी ही बात कहा करते हैं। मगर साहबों की बात के अलावा भी यहाँ ज़रा कुछ पोशीदा मामला है। विजय जब विलायत में था, तब इस मातृहीन बालक के दिन बिना जतन के ही कटे हैं। कुमार की दादी अकसर खाट पर पड़ी रहती है, अतएव काफी

धन-वैभव होते हुए भी कुमार को देखने वाला कोई न था, इसीलिए बेचारा तकलीफों में ही इतना बड़ा हुआ है। विलायत से वापस आने पर यह बात विजय को मालूम हो गयी है।

गणेशपुर आते समय विजय को भाभी ने साहस हमदर्दी दिखाकर कहा था, "लड़के को साथ लिये जा रहे हो लालाजी, गाँव की नयी जगह ठहरी ज़रा सावधानी से रहना। लौटोगे कब तक?"

"जितनी जल्दी हो सका।"

"सुना है, अपना वहाँ एक मकान भी है, बाबूजी ने खरीदा था?"

"खरीदा जरूर था, पर खरीदने के मानी ही 'होना' नहीं है, भाभी मकान है, पर उस पर अपना दखल नहीं।"

"लेकिन अब तो तुम खुद जा रहे हो, लालाजी, अब दखल होने में देर नहीं लगेगी।"

"उम्मीद तो यही करता हूँ।"

"दखल होने पर ज़रा खबर भिजवा देना।"

"क्यों, भाभी?"

इसके उत्तर में प्रभा ने कहा था, "पास ही तो है, गाँव कभी आँख से देखा नहीं, जाकर किसी दिन देख आऊंगी। अनीता का भी कॉलेज बंद है, वह भी संग जाना चाहेगी।"

इस प्रस्ताव को सुनकर विजय ने अत्यन्त पुलकित होकर कहा था, "दखल में आते ही मैं तुम्हें खबर भेज दूंगा, भाभी। तब लेकिन 'ना' नहीं कर सकोगी। अपनी बहन को भी जरूर लाना होगा।"

अनीता युवती है; देखने में सुन्दर है और ऑनर्स के साथ बी.ए. पास भी। साधारण स्त्री-जाति के विरुद्ध विजय की बाहरी अवज्ञा होने पर भी वह एक खास रमणी के प्रति एक साथ इतने गुण मौजूद होते हुए भी वह इस तरह की धारणा रखता हो, सो बात नहीं। वहाँ शान्त ग्राम के निर्जन प्रांत में और कभी प्राचीन वृक्षों की छाया से शीतल संकीर्ण ग्राम्यपथ पर एकान्त में सहसा उसके सामने आ पड़ने की संभावना उसके मन में उस दिन बार-बार झूले की तरह पेंग मार रही थी।

विजय ठेठ विलायती पोशाक पहने, सिर पर हैट, मुंह में कड़ा चुरुट और जेब में रिवॉल्वर लिये, चेरी की छड़ी घुमाता हुआ बाबू-घराने के सदर मकान में जा घुसा। साथ में दो लठैत दरबान, कुछ अनुयायी प्रजा, विनोद घोष और पुत्र कुमार। जायदाद दखल करने में यद्यपि दंगा-हंगामे का डर है, फिर भी लड़के को गोबर-गणेश बना देने के बजाय मजबूत और साहसी बनाने के लिए यह बड़ी शिक्षा है; इसलिए लड़का भी साथ आया है। मगर विनोद बराबर भरोसा देता आ रहा है कि अनुराधा अकेली और आखिर औरत ही ठहरी; वह जोर-दबंगई में नहीं जीत सकती। जब रिवॉल्वर है तो साथ ले लेना ही अच्छा है।

विजय ने कहा, "सुना है कि वह लड़की शैतान है, चट से आदमी इकट्ठे कर लेती है और वही गगन की सलाहकार थी। स्वभाव, चरित्र भी ठीक नहीं।"

विनोद ने कहा, "जी नहीं, ऐसा तो नहीं सुना।"

"मैंने सुना है।"

कहीं कोई नहीं था, विजय सुनसान आंगन में खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा। हाँ, है तो बाबुओं जैसा मकान। सामने पूजा का दालान है, अभी तक टूटा-फूटा नहीं है, परंतु जीर्णता की सीमा पर पहुँच चुका है। एक तरफ सिलसिलेवार बैठने के कमरे और बैठक खाना है– दशा सबकी एक-सी है। कबूतरों, चिड़ियों और चमगादड़ों ने स्थायी आश्रम बना रखा है।

दरबान ने आवाज दी, "कोई है?"

उसके मर्यादाशून्य ऊँचे स्वर के चीत्कार से विनोद घोष तथा और सब मारे लज्जा के संकुचित-से हो गये। विनोद ने कहा, "राधा जीजी को मैं जाकर खबर दिये आता हूँ, बाबू साहब।" कहकर वह भीतर चला गया।

उसने कंठ-स्वर और बात करने के ढंग से जान पड़ता है कि अब भी इस मकान का असम्मान करने में उसे संकोच होता है।

अनुराधा रसोई बना रही थी। विनोद ने जाकर विनय के साथ कहा, "दीदी, छोटे बाबू बाहर आये हैं।"

इस दुर्दैव की वह प्रतिदिन आशंका कर रही थी, हाथ धोकर उठकर

खड़ी हो गयी और संतोष को पुकारकर बोली, "बाहर एक दरी बिछा आ, बेटा! कहना, मौसी अभी आती है।" फिर विनोद ने कहा, "मुझे ज्यादा देर न होगी। बाबू नाराज न हो जाएँ, विनोद भइया, मेरी तरफ से ज़रा उन्हें बैठने को कह दो।"

विनोद ने लज्जित मुख से कहा, "क्या करूँ, दीदी, हम लोग गरीब रिआया ठहरे, जमींदार हुकम देते हैं तो 'ना' नहीं कर सकते।"

"सो मैं जानती हूँ, विनोद भइया।"

विनोद चला गया। बाहर दरी बिछा दी गयी, पर कोई उस पर बैठा नहीं। विजय छड़ी घुमाता हुआ टहलता और चुरुट पीता रहा।

पाँच मिनट बाद संतोष ने दरवाजे के बाहर आकर दरवाजे की ओर इशारा करते हुए डरते-डरते कहा, "मौसीजी आयी हैं।"

विजय ठिठककर खड़ा हो गया। शरीफ घराने की लड़की ठहरी, उसे क्या कहकर संबोधन करना चाहिए, वह दुविधा में पड़ गया। मगर अपनी कमजोरी जाहिर करने से काम न चलेगा, लिहाजा पुरुष-कण्ठ से उसने अन्तरालवर्तिनी की तरफ लक्ष्य करके कहा– "यह मकान हम लोगों का है, सो तुम जानती हो?"

उत्तर आया, "जानती हूँ।"

"तो फिर खाली क्यों नहीं कर रही हो?"

अनुराधा ने पूर्ववत ओट में से भांजे की जबानी अपना वक्तव्य कहलाने की कोशिश की; परंतु लड़का एक तो चालाक-चतुर न था, दूसरे नये जमींदार के कड़े मिजाज़ की बात भी उसके कान में पड़ गयी थी, इसलिए डर के मारे वह घबरा गया, एक भी शब्द उससे साफ-साफ कहते नहीं बना। विजय ने पाँच-छः मिनट तक धीरज धरकर समझने की कोशिश की, फिर सहसा डपटकर बोला, "तुम्हारी मौसी को जो कुछ कहना हो, सामने आकर कहे। नष्ट करने लायक समय मेरे पास नहीं है, मैं कोई भालू-चीता नहीं हूँ जो उसे खा जाऊंगा। मकान क्यों नहीं छोड़ती, सो बताओ?"

अनुराधा बाहर नहीं आयी, उसने वहीं से बात की। संतोष के मार्फत नहीं, अपने ही मुंह से साफ-साफ कहा, "मकान छोड़ने की बात नहीं हुई

थी। आपके पिता हरिहर बाबू ने कहा था– "इसके भीतर के हिस्से में हम लोग रह सकेंगे।"

"कोई लिखा-पढ़ी है?"

"नहीं, लिखा-पढ़ी कुछ नहीं है। मगर वे तो अब भी मौजूद हैं, उनसे पूछने पर मालूम हो जाएगा।"

"पूछने की मुझे कोई गरज नहीं है। यह शर्त उनसे लिखवा क्यों नहीं ली?"

"भइया ने इसकी जरूरत नहीं समझी। उनके मुंह की बात से लिखा-पढ़ी बड़ी हो सकती है, यह बात शायद भइया को मालूम नहीं होगी।"

इस बात का कोई संगत उत्तर न सूझने से विजय चुप रह गया। परंतु दूसरे ही क्षण भीतर से जवाब आया।

अनुराधा ने कहा, "लेकिन खुद भइया की तरफ से शर्त टूट जाने से अब तो सभी शर्तें टूट गयीं। इस मकान में रहने का अधिकार अब हमें नहीं रहा। मगर, मैं अकेली स्त्री और अनाथ बच्चा है। इसके माँ-बाप नहीं हैं, मैंने ही इसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। हमारी इस दुर्दशा पर दया करके अगर आप दो-चार दिन यहाँ न रहने देंगे तो अकेली मैं अचानक कहाँ चली जाऊँ; यही सोच रही हूँ।"

विजय ने कहा, "इस बात का जवाब क्या मुझको देना होगा? तुम्हारे भाई साहब कहाँ हैं?"

उसने जवाब दिया। "मैं नहीं जानती कहाँ हैं। आपके साथ जो अब तक मैं भेंट न कर सकी, तो केवल इस डर से कि कहीं आप नाराज न हो जाएँ।" इतना कहकर क्षण-भर चुप रहकर शायद उसने अपने को संभाल लिया; फिर कहने लगी–

"आप मालिक हैं, आपसे कुछ भी छिपाऊंगी नहीं। अपनी विपत्ति की बात साफ-साफ आपसे कह दी है, वरना एक दिन भी मकान में जबरदस्ती रहने का दावा मैं नहीं रखती। कुछ दिन बाद खुद ही चली जाऊंगी।"

उसके कण्ठ-स्वर से, बाहर से भी यह समझ में आ गया कि उसकी आँखों में आँसू भर गये हैं। विजय दुःखी हुआ और मन ही मन खुश भी

हुआ। उसने सोचा था, इसे बेदखल करने में न जाने कितना समय और कितनी परेशानियां उठानी पड़ेंगी, मगर वह सब कुछ भी नहीं हुआ, उसने तो आँसुओं से केवल भीख-सी मांग ली। उसकी जेब की पिस्तौल और दरबानों की लाठियां भीतर ही भीतर उसी को लानत देने लगीं; मगर अपनी कमजोरी भी जाहिर नहीं की जा सकती। उसने कहा, "रहने देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन मकान मुझे अपने लिए चाहिए। जहाँ हूँ, वहाँ बड़ी दिक्कत होती है; इसके सिवा हमारे घर की स्त्रियाँ भी एक बार देखने के लिए आना चाहती हैं।"

लड़की ने कहा, "अच्छी बात है, चली आयें न। बाहर के कमरों में आप आराम से रह सकते हैं और भीतर दुमंजिले पर बहुत-से कमरे हैं। स्त्रियाँ आराम से रह सकती हैं, कोई तकलीफ न होगी और परदेश में उन्हें भी तो कोई जानकार चाहिए, सो मैं उनकी बहुत-कुछ सहायता कर सकती हूँ।"

अब विजय लज्जित होकर आपत्ति जताता हुआ बोला, "नहीं-नहीं, ऐसा भी कहीं होता है? उनके साथ आदमी वगैरह सभी आयेंगे, तुम्हें कुछ न कुछ करना होगा। पर भीतर के कमरे क्या मैं एक बार देख सकता हूँ?"

उत्तर मिला, "क्यों नहीं देख सकते, है तो यह आप ही का मकान। आइए।"

भीतर घुसकर विजय ने पल-भर के लिए उसका सारा चेहरा देख लिया। माथे पर पल्ला है, पर घूंघट नहीं। अधमैली मामूली धोती पहने है, गहना कुछ भी नहीं, केवल दोनों हाथों में सोने की चूड़ियां पड़ी हैं—पुराने जमाने की। ओट में से उसका अश्रुसिंचित-स्वर विजय को अत्यन्त मधुर हुआ था। उसने सोचा था, शायद वह भी वैसी होगी– खासकर गरीब होने पर भी। वह बड़े घर की लड़की ठहरी। मगर देखने पर उसकी आशा के अनुरूप उसमें कुछ भी नहीं मिला। रंग गोरा नहीं, मंजा हुआ सांवला, बल्कि ज़रा काले की तरफ झुका हुआ ही समझिए। साधारण गाँव की लड़कियाँ दिखने में जैसी होती हैं, वैसी ही हैं। शरीर कृश, छरहरा, लेकिन काफी गठा हुआ मालूम होता है। इसमें कोई शक नहीं कि बैठे-बैठे या सोये-सोये उसके

दिन नहीं बीते। केवल उसमें एक विशेषता दिखाई दी, उसके ललाट पर आश्चर्यजनक निर्दोष सुन्दर गठन है।

लड़की ने कहा, "विनोद-भइया, बाबू को तुम सब दिखा-भला दो, मैं रसोईघर में हूँ।"

"तुम साथ नहीं रहोगी, राधू दीदी?"

"नहीं।"

ऊपर जाकर विजय ने घूम-फिरकर सब देखा-भाला। बहुत से कमरे हैं। पुराने जमाने का बहुत-सा असबाब अब भी हर कमरे में कुछ-न-कुछ पड़ा है। कुछ टूट-फूट गया है और कुछ टूटने-फूटने की राह देख रहा है। अब उसकी कीमत मामूली ही समझिए, मगर किसी दिन थी जरूर। बाहर के कमरों की तरह ये कमरे भी जीर्ण हैं, जैसे हड्डी-पसली निकली जा रही हों। गरीबी की छाप चीजों पर गहराई के साथ पड़ी हुई है।

विजय के नीचे उतर आने पर अनुराधा रसोईघर के दरवाजे के पास आकर खड़ी हो गयी। गरीब और बुरी हालत में होने पर भी वह भले घर की लड़की ठहरी, इसलिए विजय को अब 'तुम' संबोधन करने में शर्म मालूम हुई। उसने कहा, "आप इस मकान में और कितने दिन रहना चाहती हैं?"

"ठीक-ठीक तो अभी नहीं बता सकती; जितने दिन आप कृपा करके रहने दें।"

"कुछ दिन रहने दे सकता हूँ, मगर ज्यादा दिन तो नहीं दे सकता। तब फिर आप कहाँ जाएंगी?"

"यही तो दिन-रात सोचा करती हूँ।"

"लोग कहते हैं कि आप गगन चटर्जी का पता जानती हैं।"

"वे और क्या-क्या कहते हैं?"

विजय इस प्रश्न का उत्तर न दे सका। अनुराधा कहने लगी, "मैं नहीं जानती, यह तो आपसे पहले ही कह चुकी हूँ। मगर जानूं भी तो क्या भाई को पकड़ा दूँ, यही आपकी आज्ञा है?"

उसके स्वर में तिरस्कार का पुट था। विजय अत्यन्त लज्जित हो गया। समझ गया कि अभिजात्य की छाप इसके मन से अभी तक मिटी नहीं है।

बोला, "नहीं, इस काम के लिए मैं आपसे नहीं कहूंगा, हो सका तो मैं खुद ही उसे खोज निकालूंगा, भागने नहीं दूंगा। मगर एक बात है, इतने दिनों से जो वह हमारा सत्यानाश कर रहा था, सो भी क्या आप कहना चाहती हैं। कि आपको नहीं मालूम था?"

कोई जवाब नहीं आया। विजय कहने लगा, "आखिर संसार में कृतज्ञता नाम की भी कोई चीज है? अपने भाई को क्या किसी दिन इस बात की सलाह आप न दे सकीं? मेरे पिता बिलकुल सीधे-सादे आदमी हैं, आपके वंश से उन्हें काफी ममत्व है और विश्वास भी खूब था, इसीलिए गगन को उन्होंने सब-कुछ सौंप रखा था, उसका क्या यही बदला है? लेकिन आप निश्चित समझ लीजिए कि मैं देश में रहता तो हरगिज ऐसा न होने देता।"

अनुराधा चुप ही रही, किसी भी बात का जवाब न पाकर विजय मन-ही-मन फिर गरम हो उठा। उसके मन में जो भी कुछ थोड़ी करुणा उत्पन्न थी, सब उड़ गयी। वह कठोर होकर कहने लगा, "इस बात को सभी जानते हैं कि मैं कड़ा हूँ, फिजूल की दया-माया मैं नहीं करता, कसूर करके मेरे हाथ से कोई बच नहीं सकता। भाई साहब से मुलाकात होने पर कम-से-कम आप इतना उनसे कह दीजिएगा।"

अनुराधा पूर्ववत् मौन ही रही। विजय कहने लगा, "आज से सारा मकान मेरे दखल में आ गया। बाहर के कमरे की सफाई हो जाने पर दो-तीन दिन बाद यहीं चला आऊंगा। स्त्रियाँ उसके बाद आयेंगी। आप नीचे के कमरे में रहिए– जब तक कि आप और कहीं न जा सकें। मगर कोई चीज-वस्तु हटाने की कोशिश न कीजिएगा।"

इतने में कुमार बोल उठा, "पिताजी, प्यास लगी है, पानी पीऊंगा।"

"यहाँ पानी कहाँ है?"

अनुराधा ने हाथ के इशारे से उसे अपने पास बुला लिया और रसोई के भीतर ले जाकर कहा, "डाभ (कच्चा नारियल) है, पीओगे, बेटा?"

"हाँ, पीऊंगा।"

संतोष के काट देने पर उसने पेट भरकर उसका पानी पिया और कच्ची गरी निकालकर खायी। बाहर आकर बोला, "पिताजी, तुम पिओगे? बड़ा मीठा है।"

"नहीं।"

"पिओ न, पिताजी, बहुत हैं। अपने ही तो हैं सब।"

बात कोई नहीं थी, फिर भी इतने आदमियों के बीच लड़के के मुंह से ऐसी बात सुनकर सहसा वह शर्मिंदा-सा हो गया। बोला, "नहीं, नहीं पीऊंगा, तू इधर चल।"

(4)

बाबुओं के मकान का सदर अधिकार करके विजय जमकर बैठ गया। दो कमरे उसने अपने लिए रखे और बाकी कमरों में कचहरी कर दी। विनोद घोष किसी जमाने में जमींदारी सरिश्ते में काम कर चुका था, उसी बूते पर वह नया गुमाश्ता नियुक्त हो गया। परंतु झंझट नहीं मिटी। इसका मुख्य कारण यह था कि गगन चटर्जी रुपये वसूल करके हाथ-के-हाथ रसीद देना अपमानकारक समझता था; क्योंकि उसमें अविश्वास की बू आती है, वह चटर्जी-वंश के लिए गौरव की बात थी। इसलिए उसके अंतर्धान के बाद प्रजा आफत में फंस गयी है, मौखिक साक्षी और प्रमाण ले-लेकर लोग रोज ही हाजिर हो रहे हैं, रोते-झींकते हैं– किसने कितना दिया और किस पर कितना बाकी है, इसका निर्णय करना एक कष्टसाध्य और जटिल प्रश्न हो गया है। विजय जितनी जल्दी कलकत्ता लौटने की सोचकर आया था, उतनी जल्दी न जा सका। एक दिन, दो दिन करते-करते दस-बारह दिन बीत गये। इधर लड़के की संतोष से मित्रता हो गयी है। उमर में वह दो-तीन साल छोटा है, सामाजिक और सांसारिक पार्थक्य भी बहुत बड़ा है, परंतु अन्य किसी साथी के अभाव में वह उसी के साथ हिल-मिल गया है। उसी के साथ वह घर के भीतर रहता है। बाग-बगीचों और नदी-किनारे घूमा-फिरा करता है– कच्चे आम और चिड़ियों के घोंसलों की खोज में। संतोष की मौसी के पास ही अक्सर खा-पी लिया करता है। संतोष की देखा-देखी वह भी 'मौसीजी' कहा करता है। विजय रुपये-पैसे के हिसाब के झंझट में बाहर ही फंसा रहता है, जिससे हर वक्त वह लड़के की खोज-खबर नहीं ले सकता। जब खबर लेने की फुरसत मिलती है तो उसका पता नहीं

लगता। सहसा कभी किसी दिन डाँट-फटकार लगाकर उसे पास बैठा भी रखता है तो छुटकारा पाते ही वह दौड़कर मौसीजी की रसोईघर में जा घुसता है। संतोष के साथ बैठकर दोपहर को भात खाता है और शाम को रोटी और गरी के लड्डू का बंटवारा कर लेता है।

उस दिन शाम को लोग-बाग कोई आये नहीं थे; विजय ने चाय पीकर चुरुट सुलगाते हुए सोचा- चलें, नदी-किनारे घूम आएँ। अचानक याद आयी, दिन-भर से आज लड़का नहीं दिखाई दिया। पुराना नौकर खड़ा था, उससे पूछा, "कुमार कहाँ है रे?"

उसने इशारे से दिखाते हुए कहा, "भीतर।"

"रोटी खाई थी आज?"

"नहीं।"

"जबरदस्ती पकड़कर खिला क्यों नहीं देता?"

"यहाँ खाना जो नहीं चाहता, मालिक, गुस्सा होकर फेंक-फांककर चल देता है।"

"कल से उसे मेरे साथ खाने बैठाना।" यह कहकर न जाने क्या सोचकर वह टहलने जाने के बजाय सीधा भीतर चला गया। लम्बे-चौड़े आंगन के दूसरी तरफ से लड़के की आवाज़ सुनाई दी, "मौसीजी, एक रोटी और, दो गरी के लड्डू-जल्दी।"

जिसे आदेश दिया गया, उसने कहा, "उतर आओ न, बेटा, तुम लोगों की तरह मैं क्या पेड़ पर चढ़ सकती हूँ?"

जवाब मिला, "चढ़ सकोगी, मौसी, ज़रा भी मुश्किल नहीं। उस मोटी डाल पर पैर रखकर इस छोटी डाल को पकड़कर चट से चढ़ आओगी।"

विजय पास जाकर खड़ा हो गया। रसोईघर के सामने एक बड़ा-सा आम का पेड़ है, उसी की दो मोटी डालों पर कुमार और संतोष बैठे हैं। पैर लटकाकर तने से पीठ टेके दोनों खा रहे थे। विजय को देखते ही दोनों सिटपिटा गये। अनुराधा रसोईघर के किवाड़ के पीछे छिपकर खड़ी हो गयी।

विजय ने पूछा, "यही क्या इन लोगों की खाने की जगह है?"

किसी ने उत्तर नहीं दिया। विजय अंतरालवर्तिनी को लक्ष्य करके कहने लगा, "आप पर देखता हूँ कि यह जोर-जुल्म किया करता है।"

अबकी बार अनुराधा ने मुक्त-कंठ से जवाब दिया, "हाँ।"

"फिर भी तो आप सिर चढ़ाने में कसर नहीं रखतीं, क्यों सिर चढ़ा रही हैं?"

"नहीं चढ़ाने से और भी ज्यादा ऊधम मचायेंगे, इस डर से।"

"लेकिन सुना है कि घर पर तो ऐसा ऊधम नहीं करता।"

"संभव है, न करता हो। उसकी माँ नहीं है, दादी बीमार रहा करती हैं, आप काम-काज में बाहर फंसे रहते हैं। ऊधम मचाता किसके आगे?"

विजय को यह बात मालूम न हो, सो नहीं; परंतु फिर भी लड़के की माँ नहीं है, यह बात दूसरे के मुंह से सुनकर उसे दुःख हुआ। बोला, "आप तो मालूम होता है, बहुत-कुछ जान गयी हैं। किसने कहा आपसे? कुमार ने?"

अनुराधा ने धीरे से कहा, "कहने लायक उमर उसकी नहीं हुई, फिर भी उसके मुंह से ही सुना है। दोपहर को मैं इन लोगों को धूप में बाहर निकलने नहीं देती तो आँख बचाकर भाग जाते हैं। जिस दिन नहीं जा पाते, उस दिन मेरे पास लौटकर घर की बातें किया करते हैं।"

विजय उसका चेहरा न देख सका; परंतु उस पहले दिन की तरह आज भी उसका कण्ठ-स्वर उसे अत्यंत मधुर मालूम हुआ; इसी से कहने के लिए नहीं, बल्कि सिर्फ सुनने के लिए ही बोला, "अब की बार घर जाकर उसे बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ेगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि ऊधम मचाना एक तरह का नशा है। न मचा सकने से शरीर कसमसाता है। दूसरे, वहाँ उसके नशे की खुराक कौन जुटायेगा? दो ही दिन में भागना चाहेगा।"

अनुराधा ने आहिस्ता से कहा, "नहीं-नहीं, भूल जाएगा। कुमार, उतर आओ, बेटा, रोटी ले जाओ।"

कुमार तश्तरी हाथ में लिये उतर आया और मौसी के हाथ से और भी कई रोटियां और गरी के लड्डू लेकर उससे सटकर खड़ा-खड़ा खाने

लगा, पेड़ पर नहीं चढ़ा। विजय ने देखा कि वे चीज धनी घर की अपेक्षा पद-गौरव में चाहे जितनी भी तुच्छ क्यों न हो, पर वास्तविक सम्मान की दृष्टि से ज़रा भी तुच्छ नहीं। लड़का क्यों मौसी के रसोईघर के प्रति इतना आसक्त हो गया है, विजय उसका कारण समझ गया। वह सोचकर तो यह आया था कि कुमार की लुब्धता पर इन लोगों की तरफ से अकारण और अतिरिक्त खर्चा की बात कहकर प्रचलित शिष्ट वाक्यों से पुत्र के लिए संकोच प्रकट करेगा और करने जा भी रहा था, पर बाधा आ पड़ी। कुमार ने कहा, "मौसीजी, कल जैसी चन्द्रपूली आज भी बनाने के लिए कहा था, सो क्यों नहीं बनाई तुमने?"

मौसी ने कहा, "कसूर हो गया, बेटा, ज़रा-सी आँख चूक गयी, सो बिल्ली ने दूध उलट दिया, कल ऐसा न होगा।"

"कौन-सी बिल्ली ने, बताओ तो? सफेद ने?"

"वही होगी, शायद।" कहकर अनुराधा उसके माथे के बिखरे हुए बालों में हाथ फेरने लगी। विजय ने कहा, "ऊधम तो देखता हूँ क्रमशः जुल्म में परिणत हो रहा है।"

कुमार ने कहा, "पीने का पानी कहाँ है?"

"अरे! भूल गयी बेटा, लाये देती हूँ।"

"तुम सब भूल जाती हो, मौसी, तुम्हें कुछ भी याद नहीं रहता।"

विजय ने कहा, "आप पर फटकार पड़नी चाहिए। कदम-कदम पर गलती होती है।"

"हाँ।" कहकर अनुराधा हँस दी। असावधानी के कारण यह हँसी विजय ने देख ली। पुत्र के अवैध आचरण के लिए क्षमा मांगना न हो सका, इस डर से कि कहीं उसके भद्र वाक्य अभद्र व्यंग्य-से न सुनाई दें, कहीं यह महिला ऐसा न समझ बैठे कि उसकी गरीबी और बुरे दिनों पर वह कटाक्ष किया जा रहा है।

दूसरे दिन दोपहर को अनुराधा कुमार और संतोष को भात परोसकर तरकारी परोस रही थी, माथा खुला था, बदन का कपड़ा कहीं का कहीं जा रहा था, इतने में अचानक दरवाजे के पास किसी आदमी की परछाई आ

पड़ी। अनुराधा ने मुंह उठाकर देखा तो छोटे बाबू हैं। एकाएक सकुचाकर उसने माथे पर कपड़ा खींच लिया और वह उठकर खड़ी हो गयी।

विजय ने कहा, "एक बहुत जरूरी सलाह के लिए आपके पास आया हूँ। विनोद घोष इसी गाँव का आदमी ठहरा, आप तो उसे जानती होंगी। कैसा आदमी है, बता सकती हैं? उसे गणेशपुर का नया गुमाश्ता कायम किया है। पूरी तौर से उस पर विश्वास किया जा सकता है या नहीं, आपका क्या ख्याल है?"

विनोद एक सप्ताह से ज्यादा हो गया, यथासाध्य काम तो अच्छा ही कर रहा है, किसी तरह की गड़बड़ी नहीं की, सहसा घबराकर उसके चरित्र की खोज-खबर लेने की ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी– अनुराधा की कुछ समझ में न आया। उसने मृदु कण्ठ से पूछा, "विनोद भइया कुछ कर बैठे हैं क्या?"

"अभी तक कुछ किया तो नहीं, मगर सावधान होने की जरूरत तो है ही?"

"मैं तो उन्हें अच्छा आदमी ही समझती आयी हूँ।"

"सचमुच समझती हैं या निन्दा नहीं करना चाहिए, इसलिए अच्छा कह रही हैं?"

"मेरे भले-बुरे कहने की क्या कोई कीमत है?"

"है क्यों नहीं! वह तो आपको ही प्रामाणिक साक्षी मान बैठा है।"

अनुराधा ने ज़रा सोच-विचारकर कहा, "हैं तो वह अच्छे ही आदमी। फिर भी ज़रा निगाह रखिएगा। अपनी लापरवाही से अच्छे आदमी का भी बुरा हो जाना कोई असंभव बात नहीं है।"

विजय ने कहा, "सच्ची बात तो यही है। कारण, कसूर का कारण ढूँढा जाए तो अधिकांश मामलों में दंग रह जाना पड़ता है।" फिर लड़के को लक्ष्य करके कहा, "तेरी तकदीर अच्छी है जो अचानक एक मौसी मिल गयी तुझे नहीं तो इस जंगल में आधे दिन तुझे बगैर खाये ही बिताने पड़ते!"

अनुराधा ने धीरे से पूछा, "आपको क्या यहाँ खाने-पीने की तकलीफ हो रही है?"

विजय ने हँसकर कहा, "नहीं तो, ऐसे ही कहा है। हमेशा से परदेश में ही दिन बिताये हैं, खाने-पीने की तकलीफ की कोई खास परवाह नहीं करता।" कहकर वह चला गया। अनुराधा ने खिड़की की सेंध में से देखा कि अभी तक वह नहाया-निबटा भी नहीं है।

(5)

इस मकान में आने के बाद एक पुरानी आरामकुर्सी मिल गयी थी, शाम को उसी के हथेलों पर दोनों पैर पसारकर विजय आँखें मींचे चुरुट पी रहा था; इतने में कान में भनक पड़ी, "बाबू साहब!" आँखें खोलकर देखा-पास ही एक वृद्ध सज्जन खड़े सम्मान के साथ उसे सम्बोधन कर रहे हैं। विजय उठकर बैठ गया। सज्जन की उमर साठ के ऊपर पहुँच चुकी है, लेकिन मजे का गोलमटोल ठिगना मजबूत समर्थ शरीर है। मूँछे पककर सफेद हो गयी हैं, मगर गंजी चांद के इधर-उधर के बाल भोरे-से काले हैं। सामने के दो-चार दांतों के सिवा बाकी प्रायः सभी बने हुए हैं। बदन पर टसर का कोट और कंधे पर चादर है, पांव में चीनी दुकान के वार्निशदार जूते हैं और घड़ी की सोने की चेन के साथ सोने से मढ़ा हुआ बाघ का नाखून लटक रहा है। गाँव में ये सज्जन बहुत धनाढ्य मालूम पड़ते हैं। पास ही एक टूटी चौकी पर चुरुट का सामान रखा था। उसे खिसकाकर विजय ने उन्हें बैठने को कहा। वृद्ध सज्जन ने बैठकर कहा, "नमस्कार बाबू साहब!"

विजय ने कहा, "नमस्कार।"

आगन्तुक ने कहा, "आप लोग गाँव के जमींदार ठहरे, आपके पिताजी बड़े प्रतिष्ठित लखपति आदमी हैं। नाम लेते सुप्रभात होता है, आप उन्हीं के सुपुत्र हैं उस बेचारी पर दया न करने से बड़े संकट में पड़ जाएगी।"

"बेचारी कौन? उस पर कितने रुपये निकलते हैं?"

सज्जन ने कहा, "रुपये-पैसे का मामला नहीं है। जिसका मैं जिक्र कर रहा हूँ, वह है स्वर्गीय अमर चटर्जी की कन्या। वे प्रातः स्मरणीय व्यक्ति थे। गगन चटर्जी की सौतेली बहन। यह उसका पैतृक मकान है। वह रहेगी

नहीं, चली जाएगी, उसका इंतजाम हो गया है। मगर आप जो उसे गरदन पकड़कर निकाल दे रहे हैं, सो क्या आपके लिए उचित है?"

इस अशिक्षित वृद्ध पर गुस्सा नहीं किया जा सकता, विजय इस बात को मन-ही-मन समझ गया; परंतु बात करने के ढंग से वह जल-भुन गया। बोला, "अपना उचित-अनुचित मैं खुद समझ लूंगा, मगर आप कौन हैं जो उनकी तरफ से वकालत करने आये हैं?"

वृद्ध ने कहा, "मेरा नाम है त्रिलोचन गंगोपाध्याय, पास के गाँव मसजिदपुर में मकान है। सभी जानते हैं मुझे। आपके माँ-बाप के आशीर्वाद से इधर ऐसा कोई आदमी मिलना मुश्किल है, जिसे मेरे पास जाकर हाथ न पसारना पड़ता हो। आपको विश्वास न हो तो विनोद घोष से पूछ सकते हैं।"

विजय ने कहा, "मुझे हाथ पसारने की जरूरत होगी तो महाशयजी का पता लगा लूंगा मगर जिनकी आप वकालत करने आये हैं, उनके आप लगते कौन हैं, क्या मैं जान सकता हूँ?"

सज्जन मजाक की तौर पर ज़रा मुस्करा दिये, बोले, "मेहमान! वैशाख के ये कुछ दिन बीतने पर ही मैं उससे ब्याह कर लूंगा।"

विजय चौंक पड़ा, बोला, "आप विवाह करेंगे अनुराधा से?"

"जी हाँ। मेरा यह पक्का इरादा है। जेठ के बाद फिर जल्दी कोई लगन नहीं, नहीं तो इसी महीने में यह शुभ कार्य सम्पन्न हो जाता, यह रहने देने की बात मुझे आपसे कहनी भी न पड़ती।"

कुछ देर तक स्थिर रहकर विजय ने पूछा, "इस ब्याह की अगुवाई किसने की? गगन चटर्जी ने?"

वृद्ध ने क्रुद्ध दृष्टि से देखते हुए कहा, "वह तो फरारी आसामी है, महाशय, रिआया का सत्यानाश करके चम्पत हो गया है। इतने दिनों से वही तो विघ्न डाल रहा था, नहीं तो अगहन में ही ब्याह हो जाता। कहता था- हम लोग स्वभाव कुलीन ठहरे, कृष्ण की सन्तान, वंशज के घर बहन को नहीं ब्याहेंगे। यह था उसका बोल। अब वह गरूर कहाँ गया? वंशज के घर ही तो आखिर गरजू बनकर आना पड़ा। आजकल के जमाने में कुल कौन खोजता फिरता है, महाशय? रुपया ही कुल है, रुपया ही इज्जत, रुपया ही सब-कुछ है। कहिए, ठीक है कि नहीं?"

विजय ने कहा, "हाँ। सो तो ठीक है। अनुराधा ने मंजूर किया है?"

सज्जन ने दम्भ के साथ अपनी जांघ पर हाथ मारकर कहा, "मंजूर? कहते क्या हैं, महाशय? खुशामदें की जा रही हैं। शहर से आकर आपने जो एक घुड़की दी, बस फिर क्या था, आँखों-तले अंधेरा दिखाई देने लगा– जाऊँ तो जाऊँ कहाँ हो गया। नहीं तो मेरा तो इरादा ही बदल गया था। लड़कों की राय नहीं, बहुओं की राय नहीं, लड़कियाँ और दामाद भी सब विमुख हो गये थे– और मैंने भी सोचा कि जाने दो, गोली मारो, दो बार तो गृहस्थी हो चुकी– अब रहने दो। पर जब राधा ने स्वयं आदमी को भेजकर मुझे बुलवाकर कहा कि 'गांगुली महाशय, चरणों में स्थान दीजिए; तुम्हारे घर-आंगन बुहारकर खाऊंगी, सो भी अच्छा।' तब क्या करता, मंजूर करना ही पड़ा।"

विजय अवाक् रह गया।

वृद्ध महाशय कहने लगे, "ब्याह इसी मकान में होना चाहिए। देखने में ज़रा भद्दा मालूम होगा, नहीं तो मेरे मकान में भी हो सकता था। गगन चटर्जी की कोई एक बुआ हैं, वे ही कन्यादान करेंगी। अब सिर्फ आप राजी हो जाएँ तो सब काम ठीक हो जाए।"

विजय ने मुंह उठाकर कहा, "राजी होकर मुझे क्या करना पड़ेगा, बताइए? मैं मकान खाली करने की ताकीद न करूँ– यही तो? अच्छी बात है, ऐसा ही होगा। अब आप जा सकते हैं, नमस्कार।"

"नमस्कार, महाशयजी, नमस्कार। सो तो है ही, सो तो है ही। आपके पिता ठहरे लखपति, प्रातःस्मरणीय आदमी, नाम लेने से सुप्रभात होता है।"

"सो होता है। आप अब पधारिए।"

"तो जाता हूँ। महाशयजी, नमस्कार।" कहकर त्रिलोचन बाबू चल दिये।

वृद्ध महाशय के चले जाने पर विजय चुपचाप बैठा हुआ अपने मन को समझा रहा था कि उसे इस मामले में सिर खपाने की क्या जरूरत है? वास्तव में इसके सिवा लड़की के लिए चारा ही क्या है? कोई ऐसी बात नहीं है, जो संसार में पहले कभी हुई न हो। संसार में ऐसा तो होता रहता है, फिर उसके लिए दुश्चिन्ता किस बात की? सहसा विनोद घोष की बात

उसे याद आ गयी। उस दिन वह कह रहा था, अनुराधा अपने भइया के साथ इसी बात पर झगड़ने लगी थी कि कुल के गौरव से उसे क्या करना है, आसानी से खाने-पहनने भर को मिल जाए, इतना ही काफी है।

प्रतिवाद में गगन ने गुस्से में आकर कहा था, "तू क्या माँ-बाप का नाम डुबोना चाहती है?" अनुराधा ने जवाब दिया था, "तुम उनके वंशधर हो, नाम कायम रख सको तो रखना, मैं नहीं रख सकूंगी।"

इस बात की वेदना को विजय न समझ सका। खुद भी वह कौलीन्य-सम्मान पर ज़रा भी विश्वास रखता हो, सो बात नहीं; मगर फिर भी उसकी सहानुभूति जा पड़ी गगन पर; और अनुराधा के तीखे उत्तर की ज्यों-ज्यों अपने मन में आलोचना करने लगा त्यों-त्यों उसे वह लज्जाहीन, लोभी, हीन और तुच्छ मालूम होने लगी।

इधर बाहर सहन में क्रमशः आदमियों की भीड़ जम रही थी, अब उनको लेकर उसे काम शुरू करना है; मगर आज उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगा। दरबान से कहकर उनको विदा कर दिया; और बैठक में अकेला बैठा न गया तो वह न जाने क्या सोचकर एकबारगी सीधा घर के भीतर पहुँच गया। रसोईघर के सामने खुले बरामदे में चटाई बिछाकर अनुराधा लेटी हुई है, उसके दोनों तरफ दोनों लड़के हैं- कुमार और संतोष। महाभारत की कहानी चल रही है। रात की रसोई का काम वह जल्दी-जल्दी निबटाकर रोज शाम के बाद इसी तरह लड़कों के साथ लेटकर कहानियां सुनाया करती है, फिर कुमार को खिला-पिलाकर उसे अपने बाप के पास भेज दिया करती है। चांदनी रात है, घन-पल्लव आम्रवृक्ष के पत्तों की संधों में से चांदनी छन-छनकर उनके शरीर पर, चेहरे पर पड़ रही है। पेड़ की छाया में किसी आदमी को इधर आते देखा तो अनुराधा ने चौंककर पूछा, "कौन?"

"मैं हूँ विजय।"

तीनों जने भड़भड़ाकर उठ बैठे। संतोष छोटे बाबू से ज्यादा डरता है, पहले दिन की याद उसे अभी भूली नहीं है। वह ऊहापोह करके भाग गया, कुमार ने भी अपने मित्र का अनुसरण किया।

विजय ने कहा, "त्रिलोचन गांगुली को आप पहचानती हैं? आज वे मेरे पास आये थे।"

अनुराधा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा, "आपके पास? मगर आप तो उनके कर्जदार नहीं हैं?"

"नहीं। मगर होता तो शायद आपको लाभ होता; मेरे एक दिन के अत्याचार का बदला आप और किसी दिन चुका सकतीं।"

अनुराधा चुप रही। विजय कहने लगा, "वे जता गये हैं कि आपके साथ उनका ब्याह होना तय हो गया है। यह क्या सच है?"

"हाँ।"

"आपने खुद उपयाचक बनकर उन्हें राजी किया?"

"हाँ, यही बात है।"

"अगर ऐसा ही है, तो बड़ी शर्म की बात है। केवल आपके लिए ही नहीं, मेरे लिए भी।"

"आपके लिए क्यों?"

"यही बतलाने के लिए आया हूँ। त्रिलोचन कह गये हैं कि मेरी ज्यादती से ही शायद आपने ऐसा प्रस्ताव किया है। कहते थे, आपके लिए ठौर नहीं; और बहुत आरजू-विनती करके आपने उन्हें राजी किया है, नहीं तो इस बुढ़ापे में उन्होंने ब्याह ही इच्छा छोड़ दी थी। केवल आपके रोने-धोने पर दया करके ही त्रिलोचन राजी हुए हैं!"

"हाँ, यह सब सच है।"

विजय ने कहा, "अपनी ज्यादती मैं वापस लेता हूँ, और अपने आचरण के लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ।"

अनुराधा चुप रही। विजय कहने लगा, "अब अपनी तरफ से आप प्रस्ताव को वापस ले लीजिए।"

"नहीं, सो नहीं हो सकता, मैंने वचन दे दिया है। सब कोई सुन चुके हैं। लोग उनका मखौल उड़ायेंगे।"

"और इसमें नहीं उड़ायेंगे? बल्कि बहुत ज्यादा उड़ायेंगे। उनके बराबर के लड़के हैं? लड़कियाँ हैं, उनके साथ लड़ाई-झगड़ा होगा; उनकी घर-गृहस्थी में उपद्रव उठ खड़ा होगा, खुद आपके लिए भी अशान्ति की हद न रहेगी। ये सब बातें आपने सोच-विचार ली हैं?"

अनुराधा ने मुलायम स्वर में कहा, "सोच ली हैं। मेरा विश्वास है कि यह सब कुछ नहीं होने का।"

सुनकर विजय दंग रह गया, बोला, "वृद्ध हैं, कितने दिन जीयेंगे– आप आशा करती हैं?"

अनुराधा ने कहा, "पति की परमायु संसार में सभी स्त्रियाँ चाहती हैं ऐसा भी हो सकता है कि सुहाग लिये मैं ही पहले मर जाऊँ।"

विजय को इस बात का जवाब ढूँढे न मिला; स्तब्ध होकर खड़ा रहा। कुछ क्षण इसी तरह निस्तब्धता में बीत जाने पर अनुराधा ने विनीत स्वर में कहा, "यह सच है कि आपने मुझे चले जाने का हुक्म दे दिया है, मगर फिर किसी दिन इस बात का उल्लेख तक नहीं किया। दया के योग्य मैं नहीं हूँ, फिर भी आपने दया की है। मन-ही-मन मैं इसके लिए कितनी कृतज्ञ हूँ, यह जता नहीं सकी हूँ।"

विजय की तरफ से कोई उत्तर न पाकर कहने लगी, "भगवान् जानते हैं, आपके विरुद्ध किसी के पास मैंने एक भी बात नहीं कही। कहने से मेरी तरफ से अन्याय होता, मेरा झूठा कहना होता। गांगुली महाशय ने अगर कुछ कहा हो तो वह उनकी बात है, मेरी नहीं। फिर भी मैं उनकी तरफ से क्षमा मांगती हूँ।"

विजय ने पूछा, "आप लोगों का ब्याह है, 13 जेठ को? तो करीब महीना भर बाकी है न?"

"हाँ।"

"इसमें अब कोई परिवर्तन नहीं हो सकता शायद?"

"शायद नहीं। कम-से-कम भरोसा तो वे ऐसा ही दे गये हैं।"

विजय बहुत देर तक चुप रहकर बोला, "तो फिर मुझे और कुछ नहीं कहना, लेकिन अपने भविष्य जीवन पर आपने ज़रा भी विचार नहीं किया, इस बात का मुझे बड़ा अफसोस है।"

अनुराधा ने कहा, "एक बार नहीं, सौ-सौ बार विचार कर लिया है। यह मेरी दिन-रात की चिंता है। आप मेरे शुभाकांक्षी हैं, आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की भाषा ढूँढे नहीं मिलती, लेकिन आप खुद ही तो एक बार

मेरे विषय में सारी बातें सोच देखिए– पैसा नहीं, रूप नहीं, बिना अभिभावक की अकेली, गाँव के अनाचार-अत्याचारों से बचकर कहीं जाकर खड़े होने तक को ठौर नहीं। उमर हो गयी तेईस-चौबीस। उनके सिवा और कौन मुझे ब्याहना चाहेगा, आप ही बताइए? तब फिर दाने-दाने के लिए किसके सामने हाथ पसारती फिरूंगी? सुनकर आप भी क्या सोचेंगे मन में?"

ये सब बातें सच हैं, प्रतिवाद में कुछ कहा नहीं जा सकता है। दो-तीन मिनट निरुत्तर खड़े रहकर विजय ने गंभीर अनुताप के साथ कहा, "ऐसे समय में क्या आपका मैं कोई भी उपकार नहीं कर सकता? कर सकता तो बहुत खुश होता।"

अनुराधा ने कहा, "आपने मेरा बहुत उपकार किया है, जो कोई नहीं करता। आपके आश्रम में मैं निडर हूँ। दोनों बच्चे मेरे चांद-सूरज हैं– यही मेरे लिए काफी हैं। आपसे सिर्फ इतनी ही प्रार्थना है कि मन-ही-मन आप मुझे भइया के दोष की भागिनी न बना रखिएगा, मैंने जान-बूझकर कोई अपराध नहीं किया।"

"मुझे मालूम हो गया है; आपको कहना न होगा।" इतना कहकर विजय धीरे-धीरे बाहर चला गया।

कलकत्ता से कुछ साग-सब्जी, फल-फलारी और मिठाई वगैरह आयी थी। विजय ने नौकर से रसोईघर के सामने टोकरी उतरवाकर कहा, "भीतर होंगी जरूर।"

विजय ने कहा, "आपको पुकारना भी मुश्किल है। हमारे समाज में होतीं, तो मिस चटर्जी या मिस अनुराधा कहकर आसानी से पुकारा जा सकता था, पर यहाँ तो वह बात बिलकुल चल ही नहीं सकतीं। आपके लड़कों में से कोई होता तो उनमें से किसी को 'अपनी मौसी को बुला दे' कहकर काम निकाल लिया जा सकता था, पर इस वक्त वे भी फरार हैं। क्या कहकर बुलाऊँ, बताइए?"

अनुराधा दरवाजे के पास जाकर बोली, "आप मालिक ठहरे, मुझे राधा कहकर पुकारा कीजिए।"

विजय ने कहा, "बुलाने में कोई आपत्ति नहीं, पर मालिकाना हक के

जोर से नहीं। मालिकाना हक था गगन चटर्जी पर, मगर वह तो चम्पत हो गया। आप क्यों मालिक मानने लगीं? आपको किस बात की गरज है?"

भीतर से सुनाई दिया, "ऐसी बात न कहिए, आप हैं तो मालिक ही।"

विजय ने कहा, "उसका दावा मैं नहीं करता, पर उमर का दावा जरूर रखता हूँ। मैं आपसे बहुत बड़ा हूँ; नाम लेकर पुकारा करूँ तो आप नाराज न होइएगा।"

"नहीं।"

विजय ने इस बात पर लक्ष्य किया है कि घनिष्ठता करने का आग्रह स्वयं उसकी तरफ से कितना ही प्रबल क्यों न हो, पर दूसरे पक्ष की तरफ से ज़रा भी नहीं। वह किसी भी तरह सामने नहीं आना चाहती और बराबर संक्षेप और सम्मान के साथ ही ओट में छिपे-छिपे उत्तर दिया करती है।

विजय ने कहा, "घर से कुछ साग-सब्जी, फल मिठाई वगैरह आयी है। इस टोकरी से उठाकर रख दीजिए, लड़कों को दे दीजिएगा।"

"छोड़ जाइए। जरूरत के माफिक रखकर आपके यहाँ बाहर भिजवा दूंगी।"

"नहीं, सो मत कीजिएगा। मेरा रसोइया ठीक से रसोई बनाना नहीं जानता। दोपहर से देख रहा हूँ कि चादर तान के पड़ा हुआ है। मालूम नहीं, कहीं आपके देश के मलेरिया ने धर लिया हो। बीमार पड़ गया तो परेशान कर डालेगा।"

"पर मलेरिया तो हमारे यहाँ नहीं है। वह अगर न उठा तो आपकी रसोई कौन बनायेगा?"

विजय ने कहा, "इस छाक की तो कोई बात नहीं, कल सवेरे विचार किया जाएगा और 'कुकर' तो साथ में है ही, कुछ नहीं हुआ तो अंत में नौकर से ही उसमें कुछ बनवा लूंगा।"

"लेकिन उसमें तकलीफ तो होगी ही?"

"नहीं, मुझे तो आदत पड़ी है। हाँ, लड़के को तकलीफ पाते देखता तो जरूर कष्ट होता, सो उसका भार आपने ले रखा है। क्या बना रही हैं इस छाक? टोकरी खोल के देखिए न, शायद कोई चीज काम आ जाए।"

"काम तो आयेगी ही। पर इस छाक मुझे रसोई बनानी नहीं हैं।"

"नहीं बनानी? क्यो?"

"कुमार की देह कुछ गर्म-सी मालूम होती है, रसोई बनाने से वह खाने के लिए मचलेगा। उस छाक का जो कुछ बचा है, उससे संतोष का काम चल जाएगा।"

"देह गर्म हो रही है उसकी? कहाँ है वह?"

"मेरे बिछौने पर पड़ा संतोष के साथ गप-शप कर रहा है। आज कह रहा था– बाहर नहीं जाएगा, मेरे ही पास सोएगा।"

विजय ने कहा, "सो, सोया रहे; लेकिन ज्यादा लाड़-दुलार पाने से फिर वह मौसी को छोड़कर घर नहीं जाना चाहेगा। तब फिर एक नयी परेशानी उठानी पड़ेगी।"

"नहीं उठानी पड़ेगी। कुमार कहना न मानने वाला लड़का नहीं है।"

विजय ने कहा, "क्या होने से कहना न मानने वाला होता है, सो आप जानें; पर मैंने तो सुना है कि आपको वह कम परेशान नहीं करता।"

अनुराधा कुछ देर चुप रहकर बोली, "परेशान करता है तो सिर्फ मुझ ही को करता है, और किसी को नहीं करता।"

विजय ने कहा, "सो मैं जानता हूँ, लेकिन मौसी ने, मान लो कि सह लिया, पर ताईजी उसकी नहीं सहने की और अगर किसी दिन विमाता आ गयी, तो ज़रा भी बर्दाश्त नहीं करेगी। आदत बिगड़ जाने से खुद उसी के लिए विपदा होगी।"

"लड़के के लिए विपदा हो, ऐसी विमाता आप घर में लाएँ ही क्यों? न सही।"

विजय ने कहा, "लानी नहीं पड़ती, लड़के की तकदीर फूटने पर विमाता अपने आप घर में आ जाती है। तब उस खराबी को रोकने के लिए मौसी की शरण लेनी पड़ती है। पर हाँ, अगर वे राजी हों।"

अनुराधा ने कहा, "जिसकी माँ नहीं है, मौसी उसे छोड़ नहीं सकती। कितने भी दु:खों में क्यों न हो, उसे पाल-पोसकर बड़ा करती ही है।"

"बात को सुने रखता हूँ।" कहकर विजय चला जा रहा था, फिर लौटकर बोला, "अगर अविनय को माफ करें तो एक बात पूछूँ?"

"पूछिए।"

"कुमार की चिन्ता पीछे की जाएगी, कारण उसका बाप जिन्दा है। आप उसे जितना निष्ठुर समझती हैं, उतना वह नहीं है। पर सन्तोष? उसके बाप-माँ ही जाते रहे हैं, नये मौसा त्रिलोचन के घर अगर उसके लिए ठौर न हो तो क्या करेंगी? इस बात पर विचार किया है?"

अनुराधा ने कहा, "मौसी के लिए स्थान होगा, भानजे के लिए नहीं होगा?"

"होना तो चाहिए, लेकिन जितना मैं उन्हें देख सका हूँ उससे तो ज्यादा भरोसा नहीं होता।"

इस बात का जवाब अनुराधा उसी वक्त न दे सकी, सोचने में ज़रा समय लगा। फिर शान्त और दृढ़ कंठ से कहने लगी, "तब पेड़ के नीचे दोनों के लिए स्थान होगा। उसे कोई नहीं रोक सकता।"

विजय ने कहा, "बात तो मौसी के लायक है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता; मगर यह सम्भव नहीं। तब उसे मेरे पास भेज दीजिएगा। वह कुमार का साथी है- कुमार अगर आदमी बन सका तो वह भी बन जाएगा।"

भीतर से फिर कोई जवाब नहीं आया, विजय कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद बाहर चला गया।

दो-तीन घंटे बाद संतोष आकर दरवाजे के बाहर से बोला- "मौसीजी आपको खाने के लिए बुला रही हैं।"

"मुझे?" विजय ने पूछा।

"हाँ।" कहकर चला गया।

अनुराधा के रसोईघर में आसन बिछा हुआ था। विजय आसन पर बैठकर बोला, "रात आसानी से कट जाती, क्यों आपने इतनी तकलीफ उठायी?"

अनुराधा पास ही खड़ी थी, चुप रही।

परोसी हुई चीजों में कोई अधिक नहीं थी, पर जतन से बनाये और

परोसे जाने का परिचय हर चीज में झलक रहा था। कैसे सुन्दर ढंग से वे चीजें सजी हुई थीं! खाते-खाते विजय ने पूछा, "कुमार ने क्या खाया?"

"सागू पीकर सो गया है।"

"लड़ा नहीं आज?"

अनुराधा हँस दी, बोली, "मेरे पास सोयेगा, इसलिए आज वह बिलकुल शान्त है। कतई नहीं लड़ा।"

विजय ने कहा, "उसके कारण आपकी झंझटें बढ़ गयी हैं; पर इसमें मेरा दोष नहीं। वह खुद कैसे आपकी गृहस्थी में आकर चुपचाप शामिल हो गया, यही मैं सोचता हूँ।"

"मैं भी यही सोचती हूँ।"

"मालूम होता है उसके चले जाने पर आपको कष्ट होगा।"

अनुराधा पहले तो चुप रही, फिर बोली, "उसे घर ले जाने के पहले लेकिन आपको एक वचन दे जाना होगा। आपको इस बात की निगरानी रखनी होगी कि उसे किसी बात की तकलीफ न होने पाए।"

"मगर मैं तो बाहर रहूंगा काम-काज के झंझटों में। अपने वचन की रक्षा कर सकूंगा, इस बात का भरोसा नहीं होता।"

"तो फिर उसे मेरे पास छोड़ जाना होगा।"

"आप गलती कर रही हैं। यह और भी असम्भव है।" इतना कहकर विजय हँसता हुआ खाने में लग गया। खाते-खाते बीच में बोल उठा, "भाभी वगैरह की आने की बात थी, शायद वे अब आयेंगी नहीं।"

"क्यों?"

"जिस धुन में कहा था। वह धुन शायद जाती रही होगी। शहर के लोग गाँव की तरफ जल्दी कदम नहीं बढ़ाना चाहते। एक हिसाब से अच्छा ही हुआ। अकेला मैं ही आपको असुविधा पहुँचा रहा हूँ, उन लोगों के आने से और भी दिक्कत होती।"

अनुराधा ने इस बात का प्रतिवाद करते हुए कहा, "आपका यह कहना अन्याय है। घर मेरा नहीं, आपका है। फिर भी, मैं ही सारी जगह घेरे बैठी रहूँ और उनके आने पर नाराज होऊँ, इससे ज्यादा अन्याय और कुछ हो

ही नहीं सकता। मेरे बारे में ऐसी बात सोचकर, मेरे प्रति सचमुच ही आप अन्याय कर रहे हैं। जितनी दया आपने मुझ पर की है, मेरी तरफ से उसका क्या यही प्रतिदान है?"

इतनी बातें इस ढंग से उसने कभी नहीं कहीं। जवाब सुनकर विजय दंग रह गया। गाँव की इस लड़की को उसने जितना अशिक्षित समझ रखा था, उतनी वह नहीं है। थोड़ी देर स्थिर रहकर उसने अपना कसूर मंजूर करते हुए कहा, "वास्तव में मेरा यह कहना उचित नहीं हुआ जिनके विषय में यह बात ठीक हो सकती है, उनसे आप ज्यादा बड़ी हैं। मगर दो-तीन दिन बाद ही मैं घर चला जाऊँगा; यहाँ आकर शुरू-शुरू में आपके साथ मैंने बहुत बुरा सलूक किया है, लेकिन वह बिना पहचाने हुआ है। सचमुच संसार में ऐसा ही हुआ करता है; अक्सर यही होता है। फिर भी जाने के पहले मैं गहरी लज्जा के साथ क्षमा मांगता हूँ।"

अनुराधा ने मृदु कण्ठ से कहा, "क्षमा आपको नहीं मिल सकती।"

"नहीं मिल सकती? क्यों?"

"अब तक जितना आपने अत्याचार किया है, उसकी क्षमा नहीं"— कहकर हँस दी। प्रदीप के अल्प प्रकाश में उसके हँसी-भरे चेहरे पर विजय की नजर पड़ गयी और क्षण-भर के एक अज्ञात विस्मय से उसका सारा हृदय हिलकर तुरन्त स्थिर हो गया। क्षण-भर चुप रहकर बोला, "यही अच्छा है, मुझे क्षमा करने की जरूरत नहीं। अपराधी के रूप में ही मैं हमेशा याद आता रहूँ।"

दोनों चुप रहे। दो-तीन मिनट तक कमरे में बिलकुल सन्नाटा रहा।

निस्तब्धता भंग की अनुराधा ने। उसने पूछा, "आप फिर कब तक आयेंगे?"

"बीच-बीच में आना तो होगा ही, क्योंकि आपसे भेंट न होगी।"

दूसरे पक्ष से प्रतिवाद नहीं किया गया, समझ में आ गया कि बात सच है।

खा चुकने के बाद विजय के बाहर जाते समय अनुराधा ने कहा, "टोकरी में बहुत तरह की तरकारियां हैं, पर बाहर अब न भेजूंगी। कल सवेरे भी आप यहाँ भोजन कीजिएगा।"

"तथास्तु। मगर समझ तो गयी होंगी शायद कि औरों की अपेक्षा मेरी भूख ज्यादा है। नहीं तो प्रस्ताव पेश करता कि सिर्फ सवेरे ही नहीं, निमन्त्रण की दया और भी बढ़ा दीजिए- जितने दिन मैं यहाँ रहूँ और जिससे आपके हाथ की ही खाकर घर चला जा सकूँ।"

उत्तर मिला, "यह मेरा सौभाग्य है।"

(6)

दूसरे दिन सवेरे ही अनेक प्रकार के खाद्य-पदार्थ अनुराधा के रसोईघर के बरामदे में आ पहुँचे। उसने कोई आपत्ति नहीं की, उठाकर रख दिये।

इसके बाद तीन दिन के बदले पाँच दिन बीत गये। कुमार बिलकुल स्वस्थ हो गया। इन कई दिनों में विजय ने क्षोभ के साथ लक्ष्य किया कि आतिथ्य की त्रुटि कहीं भी नहीं, पर परिचय की दूरी वैसी ही अविचलित बनी रही है, किसी भी बहाने वह तिल-भर भी निकटवर्ती नहीं हुई। बरामदे में भोजन के लिए जगह करके अनुराधा भीतर ही से ढंग के साथ थाली लगा देती है और सन्तोष परोसता है। कुमार आकर कहता, "पिताजी, मौसीजी कहती हैं कि मछली की तरकारी इतनी छोड़ देने से काम न चलेगा, और ज़रा खानी होगी।" विजय कहता, "अपनी मौसीजी से कह दे कि पिताजी को राक्षस समझना ठीक नहीं।" कुमार लौटकर कहता, "मछली की तरकारी रहने दो, शायद अच्छी न हुई होगी। लेकिन कल की तरह कटोरे में दूध पड़ा रहने से उन्हें दुःख होगा।" विजय ने सुनाकर कहा, "तेरी मौसीजी अगर कल से नांद के बदले कटोरे में दूध दिया करें तो न पड़ा रहेगा।"

इसी तरह से पाँच दिन बीत गये। स्त्रियों के आदर-जतन का चित्र विजय के मन में हमेशा से ही अस्पष्ट था। अपनी माँ को वह बचपन से ही अस्वस्थ और अपटु देखता आया है, गृहिणीपन का कोई भी कर्तव्य वे पूरी तौर से नहीं कर पाती थीं। उसकी अपनी स्त्री भी सिर्फ दो-ढाई साल जीवित रही। तब वह पढ़ता था। उसके बाद फिर उसका लम्बा समय सुदूर

प्रवास में ही बीता। उस दशा के अपने अनुभवों की भली-बुरी बहुत-सी स्मृतियां कभी-कभी उसे याद आ जाती हैं, परन्तु वे सब मानो पुस्तक में पढ़ी हुई कल्पित कहानियों की तरह अवास्तव मालूम होती हैं। जीवन की वास्तविक आवश्यकताएँ पूर्ण रूप से सम्बन्धविहीन रहीं।

और हैं उसकी भाभी प्रभामयी; सो जिस परिवार में भाभी का प्राधान्य है, भले-बुरे की आलोचना हुआ करती है, वह परिवार उसे अपना नहीं मालूम होता। माँ को उसने बहुत बार रोते देखा है, पिता को नाराज और उदास रहते देखा है; पर इन सब बातों को उसने खुद ही असंगत और अनधिकार-चर्चा समझा है। ताई अपने देवर-पुत्रों की खबर न ले, या बहू अपने सास-सुसर की सेवा न करे तो बड़ा भारी अपराध है- ऐसी धारणा भी उसकी नहीं थी और स्वयं अपनी स्त्री को भी कभी ऐसा आचरण करते देखता तो वह मर्माहत होता, सो बात भी नहीं परन्तु आज उसकी इतने दिनों की धारणा को इन अन्तिम पाँच दिनों ने मानो धक्के देकर शिथिल कर दिया। आज शाम की गाड़ी से उसके कलकत्ता रवाना होने की बात थी, नौकर-चाकर चीज-वस्तु बांधकर तैयारी कर रहे थे, कुछ ही घंटों की देर थी; इतने में संतोष ने आकर ओट में से कहा, "मौसीजी भोजन के लिए बुला रही हैं।"

"इस वक्त?"

"हाँ" कहकर संतोष वहाँ से खिसक लिया।

विजय ने भीतर जाकर देखा कि बरामदे में बाकायदा आसन बिछाकर भोजन के लिए स्थान कर दिया गया है। मौसी का गला पकड़कर कुमार झूल रहा था, उसके हाथ से अपने को छुड़ाकर अनुराधा रसोई घर में घुस गयी।

आसन पर बैठकर विजय ने कहा, "इस वक्त यह क्या?"

भीतर से अनुराधा ने कहा, "ज़रा खिचड़ी बना रखी है, खाते जाइए।"

जवाब देते समय विजय को अपना गला ज़रा साफ कर लेना पड़ा। बोला, "बेवक्त आपने क्यों तकलीफ की? इसकी अपेक्षा चार-छः पूड़ियां ही उतार देतीं, तो काम चल जाता।"

अनुराधा ने कहा, "पूड़ी तो आप खाते नहीं घर पहुँचते-पहुँचते रात के दो-तीन बज जायेंगे। बगैर खाये उपासे जाते तो क्या मुझे कम तकलीफ होती? बराबर खयाल आता रहता कि लड़का गाड़ी में बिना खाये-पिये यों ही सो गया होगा।"

विजय चुपचाप खाता रहा; फिर बोला, "विनोद को कह दिया है, वह आपकी देख-रेख करता रहेगा। जितने दिन आप इस मकान में हैं, आपको किसी तरह की तकलीफ न होगी।"

फिर वह कुछ देर चुप रहकर कहने लगा, "और एक बात आपसे कहे जाता हूँ। अगर कभी भेंट हो तो गगन से कह दीजिए कि मैंने उसे माफ कर दिया है, पर इस गाँव में अब वह न आये। आने से माफ न करूंगा।"

"कभी भेंट हुई तो उनसे कह दूंगी।" इतना कहकर अनुराधा चुप हो गयी, फिर क्षण-भर बाद बोली, "मुश्किल है कुमार को लेकर, आज वह किसी तरह जाने को राजी नहीं होता। और जाना क्यों नहीं चाहता, सो भी नहीं बताता।"

विजय ने कहा, "इसलिए नहीं बताता कि वह खुद नहीं जानता और मन-ही-मन यह भी समझता है कि वहाँ जाने से उसे तकलीफ होगी।"

"तकलीफ क्यों होगी?"

"उस घर का यही नियम है। पर हो तकलीफ, आखिर इतना बड़ा हुआ तो वहीं है।"

"उसे ले जाने की जरूरत नहीं। यहीं रहने दीजिए मेरे पास।"

विजय ने हँसते हुए कहा, "मुझे कोई आपत्ति नहीं, मगर ज्यादा-से-ज्यादा एक महीने रह सकता है, उससे ज्यादा तो रह नहीं सकता, इससे लाभ क्या?"

दोनों ही मौन रहे। अनुराधा ने कहा, "इसकी जो विमाता आयेंगी, सुना है कि वे शिक्षित हैं।"

"हाँ, वे बी.ए. पास हैं।"

"पर बी.ए. तो उसकी ताई ने भी पास किया है?"

"जरूर किया है। मगर बी.ए. पास करने वाली किताबों में देवर-पुत्र

को लाड़ प्यार से रखने की बात नहीं लिखी। इस विषय की परीक्षा उन्हें नहीं देनी पड़ी।"

"और बीमार सास-ससुर की? क्या यह बात भी किताब में नहीं लिखी रहती?"

"नहीं। यह प्रस्ताव और ज्यादा हास्यकर है।"

"हास्यकर न हो, ऐसी भी कोई बात है?"

"है। ज़रा भी किसी तरह की शिकायत न करना ही हमारे समाज का सुभद्र विधान है।"

अनुराधा क्षणभर मौन रहकर बोली, "यह विधान आप ही लोगों में रहे। पर जो विधान सबके लिए एक-सा है, वह यह है कि लड़के से बढ़कर बी.ए. पास नहीं है। ऐसी बहू को घर लाना अनुचित है।"

"लेकिन लाना तो किसी-न-किसी को पड़ेगा ही। हम लोग जिस समाज की आबो-हवा में रह रहे हैं, वहाँ बी.ए. पास बगैर इज्जत नहीं बचती, मन भी नहीं मानता और शायद घर-गृहस्थी भी नहीं चलती। माँ-बाप-मरे भानजे के लिए पेड़ के नीचे रहना मंजूर करने वाली बहू के साथ हम वनवास कर सकते हैं, पर समाज में नहीं रह सकते।"

अनुराधा का स्वर क्षण-भर के लिए तीखा हो उठा, बोली, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप इसे किसी निर्दय विमाता के हाथ नहीं सौंप सकते।"

विजय ने कहा, "सो कोई डर नहीं। कारण, सौंप देने पर भी कुमार हाथ से फिसलकर नीचे आ गिरेगा। पर इसके माने यह नहीं कि वे निर्दय ही हैं, अपनी भावी पत्नी की तरफ से मैं आपकी बात का तीव्र प्रतिवाद करता हूँ। मार्जित-रुचि-सम्मत उदास अवहेलना से उनमें मुरझाई हुई आत्मीयता की बर्बरता नाममात्र को भी नहीं। यह दोष आप उन्हें न दीजिए।"

अनुराधा हँसकर बोली, "प्रतिवाद आप जितना चाहें, पर मुझे मुरझाई हुई आत्मीयता के माने तो ज़रा समझा दीजिए!"

विजय ने कहा, "यह हम लोगों के बड़े सर्किल का पारिवारिक बन्धन है। उसका 'कोड' ही अलग है, और चेहरा भी स्वतंत्र है। उसकी जड़ें रस नहीं खींचतीं, पत्तों का रंग हरा भी नहीं होने पाता कि पीला होने लगता

है। आप गाँव के गृहस्थ-घर की लड़की हैं, स्कूल-कॉलेज में पढ़कर पास नहीं हुईं, पार्टी या पिकनिक में शरीक नहीं हुईं; लिहाजा इसका निगूढ़ अर्थ आपको मैं समझा नहीं सकता; सिर्फ इतना-सा आभास दे सकता हूँ कि कुमार की विमाता आकर उसे जहर पिलाने की भी तैयारी न करेगी और न चाबुक हाथ में लेकर उसके पीछे ही पड़ जायेगी, क्योंकि वह मार्जित-रुचि-विरुद्ध आचरण है। इसलिए इस बारे में आप निश्चिन्त हो सकती हैं।"

अनुराधा ने कहा, "मैं उनकी बात छोड़ देती हूँ, पर आप वचन दीजिए कि खुद भी देखभाल करेंगे, मेरी सिफ इतनी ही विनती है।"

विजय ने कहा, "वचन देने को तो जी चाहता है; पर मेरा स्वभाव और तरह का है, आदत भी दुनिया से अलग है। आपके आग्रह की याद करके बीच-बीच में देखने-भालने की कोशिश करता रहूंगा। मगर जितना आप चाहती हैं, उतना हो सकेगा- ऐसा तो नहीं मालूम होता। अच्छा, अब मैं भोजन कर चुका, जाता हूँ, चलने की तैयारी करनी है।"

इतना कहकर वह उठ बैठा। बोला, "कुमार आप ही के पास रहेगा, घर छोड़ने का दिन आ जाए तो उसे विनोद के साथ कलकत्ता भेज देना। जरूरत महूसस करें तो उसके साथ सन्तोष को भी बिना किसी संकोच के भेज दें। शुरू-शुरू में आपके साथ जैसा सलूक किया है, ठीक वैसी ही मेरी प्रकृति नहीं है। चलते वक्त आपको भरोसा दिये जाता हूँ कि मेरे घर कुमार से ज्यादा अनादर सन्तोष का नहीं होगा।"

मकान के सामने घोड़ागाड़ी खड़ी है, चीज-वस्तु लादी जा चुकी है, विजय गाड़ी पर चढ़ना ही चाहता था कि कुमार ने कहा, "पिताजी, मौसीजी बुला रही हैं।"

अनुराधा सदर दरवाजे के पास खड़ी थी, बोली, "प्रणाम करने के लिए बुलवा लिया, फिर कब कर सकूंगी, मालूम नहीं।" कहकर उसने गले में आँचल डालकर दूर से प्रणाम किया। फिर उठकर खड़ी हो गयी और कुमार को अपनी गोद के पास खींचकर बोली, "दादीजी से कह दीजिए कि सोच-फिकर न करें। जितने भी दिन मेरे पास रहेगा, किसी तरह का अनादर न होगा।"

विजय ने हँसकर कहा, "विश्वास होना मुश्किल है।"

"मुश्किल किसके लिए? क्या आपके लिए भी...?" कहकर वह हँस पड़ी और दोनों आँखें चार हो गयीं। विजय ने स्पष्ट देख लिया कि उसके पलक भीगे हुए हैं। मुंह झुकाकर उसने कहा, "किन्तु कुमार को ले जाकर तकलीफ न दीजिए। फिर कहने का मौका नहीं मिलेगा, इसी से बराबर कह रही हूँ। आपके घर की बात याद आते ही उसे भेजने को जी नहीं चाहता।"

"तो मत भेजिए।"

उत्तर में वह एक साँस दबाकर चुप रह गयी।

विजय ने कहा, "जाने के पहले आपको अपने वादे की बात फिर एक बार याद दिला जाऊँ। आपने वचन दिया है कि कभी कोई जरूरत पड़ेगी तो मुझे चिट्ठी लिखेंगी।"

"मुझे याद है। मैं जानती हूँ कि गांगुली महाशय से मुझे भिखारिन की तरह ही मांगना होगा, मन के सम्पूर्ण धिक्कार को तिलांजलि देकर ही मांगना होगा, पर आपके पास वह बात नहीं। जो चाहूँगी, बिना किसी संकोच के आसानी से मांग लूंगी।"

"पर याद रहे!" कहकर विजय जाना ही चाहता था कि अनुराधा ने कहा, "तो आप भी एक वचन देते जाइए। कहिए कि जरूरत पड़ने पर मुझे भी जताएंगे?"

"जताने के लायक मुझे क्या जरूरत पड़ेगी, अनुराधा?"

"सो कैसे बताऊँ। मेरे पास और कुछ नहीं है, पर जरूरत आ पड़ने पर हृदय से सेवा तो कर सकती हूँ।"

"आपके वो करने देंगे?"

"मुझे कोई भी नहीं रोक सकता।"

(7)

कुमार नहीं आया, सुनकर विजय की माँ मारे आतंक के सिहर उठी– "यह कैसी बात है, रे? जिसके साथ लड़ाई है, उसी के पास लड़के को छोड़ आया?"

विजय ने कहा, "जिसके साथ लड़ाई थी, वह पाताल में जाकर छिप गया है, माँ! किसकी मजाल कि उसे ढूँढ निकाले? तुम्हारा पोता अपनी मौसी के पास है। कुछ दिन बाद आ जाएगा।"

"अचानक उसकी मौसी कहाँ से आ गयी?"

विजय ने कहा, "भगवान् के बनाये हुए संसार में अचानक कौन कहाँ से आ पहुँचता है, माँ, कोई बता नहीं सकता। जो तुम्हारे रुपये पैसे लेकर डुबकी लगा गया है, यह उसी गगन चटर्जी की छोटी बहन है। पर तुम्हारे पोते ने सब गड़बड़ कर दिया। उसने उसका ऐसा दामन पकड़ा कि दोनों को एक साथ बगैर निकाले उसे निकाला ही नहीं जा सकता था।"

माँ ने अन्दाजे से बात को समझकर पूछा, "कुमार मालूम होता है उसके बस में हो गया है। उस लड़की ने उसे खूब लाड़-प्यार किया होगा शायद। बेचारे को लाड-प्यार तो मिला नहीं कभी।" कहकर उन्होंने अपनी अस्वस्थता की याद करके एक गहरी साँस ली।

विजय ने कहा, "मैं तो बाहर रहता था, घर के भीतर कौन किसे लाड़-प्यार कर रहा है, मैंने आँखों से देखा नहीं। पर जब चलने लगा तो देखा कि कुमार अपनी मौसी को छोड़कर किसी तरह आना ही नहीं चाहता।"

माँ का सन्देह इतने पर भी न मिटा, कहने लगीं, "गाँव की लड़कियाँ बहुत तरह की बातें जानती हैं। साथ न लाकर तूने अच्छा नहीं किया।"

विजय ने कहा, "तुम खुद गाँव की लड़की होकर गाँव के विरुद्ध शिकायत कर रही हो, माँ? अन्त में तुम्हारा विश्वास शहर की लड़कियों पर ही हो गया क्या?"

"शहर की लड़कियाँ? उनके चरणों में लाखों प्रणाम!" यह कहकर माँ ने दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगा लिये।

विजय हँस दिया। माँ ने कहा, "हँसता क्या है रे, मेरा दुःख सिर्फ मैं ही जानती हूँ, और जानते हैं वे!" कहते-कहते उनकी आँखें डबडबा आयीं, बोलीं, "हम लोग जहाँ की हैं, वे गाँव क्या अब रहे हैं, बेटा? जमाना बिलकुल ही बदल गया है।"

विजय ने कहा, "बहुत बदल गया है, पर जब तक तुम लोग जीती हो, तब तक शायद तुम्हीं लोगों के पुण्य से वे बने रहेंगे, माँ, बिलकुल लोप नहीं होगा उनका। उसी की थोड़ी-सी झांकी अब की देख आया हूँ। पर तुम्हें तो वह चीज दिखाना मुश्किल है, यही दुःख रह गया मन में।" इतना कहकर वह ऑफिस चला गया। ऑफिस के काम के तकाजे से ही उसे यहाँ चला आना पड़ा है।

शाम को ऑफिस से लौटकर विजय भइया-भाभी के साथ भेंट करने गया। जाकर देखा कि कुरुक्षेत्र का युद्ध-काण्ड चल रहा है। शृंगार की चीज-वस्तु इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं, भइया आराम कुर्सी के हत्थे पर बैठे जोर-जोर से कह रहे हैं, "हरगिज़ नहीं। जाना हो, अकेली चली जाओ। ऐसी रिश्तेदारी पर मैं..." इत्यादि।

अकस्मात् विजय को देखते ही प्रभा एक साथ जोर से रो पड़ी। बोली, "अच्छा लालाजी, तुम्हीं बताओ, उन लोगों ने अगर सितांशु के साथ अनीता का ब्याह पक्का कर दिया तो इसमें मेरा क्या दोष? आज उसकी सगाई पक्की होगी और ये कहते हैं कि मैं नहीं जाऊँगा। इसके माने तो यही हुए कि मुझे भी नहीं जाने देंगे।"

भइया गरज उठे, "क्या कहना चाहती हो तुम, तुम्हें मालूम नहीं था! हम लोगों के साथ ऐसी जालसाजी करने की क्या जरूरत थी इतने दिनों तक?"

माज़रा क्या है, सहसा समझ न सकने से विजय हतबुद्धि-सा हो गया, पर समझने में ज्यादा देर भी नहीं लगी। उसने कहा, "ठहरो, ठहरो। क्या हुआ, बताओ भी तो! अनीता के साथ सितांशु घोषाल का ब्याह होना तय हो गया है, यही तो? आज ही सगाई पक्की होगी?"

भइया ने हुंकार के साथ कहा, "हूँ! और ये कहना चाहती हैं कि इन्हें कुछ मालूम ही नहीं!"

प्रभा रोती हुई बोली, "भला मैं क्या कर सकती हूँ, लालाजी? भइया मौजूद हैं, माँ हैं, लड़की खुद सयानी हो चुकी है, अगर वे अपना वचन भंग कर रहे हैं, तो इसमें मेरा क्या दोष?"

भइया ने कहा, "दोष यही कि वे धोखेबाज हैं, पाखण्डी हैं और झूठे हैं। एक तरफ जबान देकर दूसरी तरफ छिपे-छिपे जाल फैलाये हुए बैठे

थे। अब लोग हँसेंगे और कानाफूसी करेंगे, मैं क्लब में मारे शरम के मुंह नहीं दिखा सकूंगा।"

प्रभा उसी तरह रुआंसे स्वर में कहने लगी, "ऐसा क्या कहीं होता नहीं? इसमें तुम्हारे शर्माने की कौन-सी बात है?"

"मेरे शरमाने की वजह यह है कि वह तुम्हारी बहन है। दूसरे, मेरी ससुराल के सब-के-सब धोखेबाज हैं, इसलिए। उसमें तुम्हारा भी एक बड़ा हिस्सा है, इसलिए।"

अब तो भइया के चेहरे की तरफ देखकर विजय हँस पड़ा, परन्तु उसी वक्त उसने झुककर प्रभा के पैरों की धूल माथे से लगाकर प्रसन्न मुख से कहा, "भाभी, भइया चाहे जितना भी क्यों न गरजें, मैं गुस्सा या अफसोस तो करूंगा ही नहीं, बल्कि सचमुच ही अगर उसमें तुम्हारा हिसा हो तो मैं तुम्हारा चिर-कृतज्ञ रहूंगा।"

फिर भइया की तरफ मुड़कर कहा, "भइया, तुम्हारा गुस्सा होना सचमुच बड़ा अन्याय है। इस मामले में जबान देना कोई अर्थ नहीं रखता, अगर उसे बदलने का मौका मिले। ब्याह कोई बच्चों का खेल नहीं है। सितांशु विलायत से आई.सी.एस. होकर लौटा है, उच्च श्रेणी का आदमी ठहरा। अनीता देखने में सुन्दर है, बी.ए. पास है और मैं? यहाँ भी पास नहीं कर सका, विलायत में भी सात-आठ साल बिताकर एक डिग्री हासिल नहीं कर सका और अब लकड़ी की दुकान पर लकड़ी बेचकर गुजर करता हूँ। न तो पद-गौरव है, न कोई किताब है। इसमें अनीता ने कोई अन्याय नहीं किया, भइया!"

भइया ने गुस्से के साथ कहा, "हजार बार अन्याय किया है। तू क्या कहना चाहता है कि तुझे ज़रा भी दुःख नहीं हुआ?"

विजय ने कहा, "भइया, तुम बड़े हो, पूज्य हो, तुमसे झूठ नहीं बोलूंगा। तुम्हारे पैर छूकर कहता हूँ मुझे ज़रा भी दुःख नहीं। अपने पुण्य से तो नहीं, किसके पुण्य से बचा, सो भी नहीं मालूम; पर जान पड़ता है कि मैं बच गया। भाभी, चलो, मैं ले चलता हूँ। भइया चाहें तो नाराज होकर घर में बैठे रहें, मगर हम-तुम चलो, चलें तुम्हारी बहन की सगाई में भरपेट खा आएँ।"

प्रभा ने उसके चेहरे की ओर देखकर कहा, "तुम मेरा मज़ाक उड़ा रहे हो, लालाजी?"

"नहीं, भाभी, मज़ाक नहीं उड़ाता। आज मैं अन्तःकरण से तुम्हारा आशीर्वाद चाहता हूँ, तुम्हारे वरदान से भाग्य मेरी तरफ फिर से मुंह उठाकर देखे। पर अब देर न करो। तुम कपड़े पहन लो। मैं भी ऑफिस के कपड़े बदल आऊँ।" कहकर जल्दी से वह जाना चाहता था कि भइया कह उठे, "तेरे लिए निमन्त्रण नहीं है, तू वहाँ कैसे जाएगा?"

विजय ठिठककर खड़ा हो गया, बोला, "सो तो ठीक है। शायद वे शर्मिन्दा होंगे। पर बिना बुलाये कहीं भी जाने में आज मुझे कोई संकोच नहीं। इच्छा हो रही है कि दौड़ा जाऊँ और कह आऊँ कि अनीता, तुमने मुझे धोखा नहीं दिया, तुम पर न मुझे कोई गुस्सा है, न कोई जलन है, मेरी प्रार्थना है कि तुम सुखी होओ। भइया, मेरी प्रार्थना मानो, नाराजगी न रखो, भाभी को ले जाओ; कम-से-कम मेरी तरफ से ही सही, अनीता को आशीर्वाद दे आओ तुम दोनों।"

भइया और भाभी दोनों ही हतबुद्धि-से होकर उसकी तरफ देखने लगे। सहसा दोनों की निगाहें विजय के चेहरे पर पड़ीं। उसके चेहरे पर व्यंग्य का सचमुच ही कोई चिह्न नहीं था, क्रोध या अभिमान की लेशमात्र छाया उसके कण्ठस्वर में नहीं थी- सचमुच ही मानो किसी सुनिश्चित विपत्ति के फन्दे से बच जाने से उसका मन अकृत्रिम पुलक से भर गया था। आखिर प्रभा अनीता की बहन ठहरी, बहन के लिए यह इंगित उपादेय नहीं हो सकता। अपमान के धक्के से प्रभा का हृदय सहसा जल उठा, उसने मानो कुछ कहना भी चाहा, पर गला रुंध गया।

विजय ने कहा, "भाभी, अपनी सब बातें कहने का अभी समय नहीं आया, कभी आयेगा या नहीं, सो भी नहीं मालूम- लेकिन अगर आया किसी दिन, तो उस दिन तुम भी कहोगी कि लालाजी, तुम भाग्यवान् हो, तुम्हें मैं आशीर्वाद देती हूँ।"

अनुपमा का प्रेम
शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

(1)

ग्यारह वर्ष की आयु से ही अनुपमा उपन्यास पढ़-पढ़कर मस्तिष्क को एकदम बिगाड़ बैठी थी। वह समझती थी, मनुष्य के हृदय में जितना प्रेम, जितनी माधुरी, जितनी शोभा, जितना सौंदर्य, जितनी तृष्णा है, सब छान-बीनकर, साफ कर उसने अपने मष्तिष्क के भीतर जमा कर रखी है। मनुष्य-स्वभाव, मनुष्य-चरित्र, उसका नख दर्पण हो गया है। संसार में उसके लिए सीखने योग्य वस्तु और कोई नहीं है, सब कुछ जान चुकी है, सब कुछ सीख चुकी है। सतीत्व की ज्योति को वह जिस प्रकार देख सकती है, प्रणय की महिमा को वह जिस प्रकार समझ सकती है, संसार में और भी कोई उस जैसा समझदार नहीं है, अनुपमा इस बात पर किसी तरह भी वि श्वाश नहीं कर पाती। अनु ने सोचा- वह एक माधवीलता है, जिसमें मंजरियां आ रही हैं, इस अवस्था में किसी शाखा की सहायता लिये बिना उसकी मंजरियां किसी भी तरह प्रफ्फुलित होकर विकसित नहीं हो सकतीं। इसलिए ढूंढ-खोजकर एक नवीन व्यक्ति को सहयोगी की तरह उसने मनोनीत कर लिया एवं दो-चार दिन में ही उसे मन प्राण, जीवन, यौवन सब कुछ दे डाला। मन-ही-मन देने अथवा लेने का सबको समान अधिकार है, परन्तु ग्रहण करने से पूर्व सहयोगी को भी बताने की आवश्यकता होती है। यहीं आकर माधवीलता कुछ विपत्ति में पड़ गई। नवीन नीरोदकान्त को वह किस तरह जताए कि वह उसकी माधवीलता है, विकसित होने के लिए खड़ी हुई है, उसे आश्रय न देने पर इसी समय मंजरियों के पुष्पों के साथ वह पृथ्वी पर लोटती-पोटती प्राण त्याग देगी।

परन्तु सहयोगी उसे न जान सका। न जानने पर भी अनुमान का प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगा। अमृत में विष, सुख में दुःख, प्रणय में विच्छेद

चिर प्रसिद्ध हैं। दो-चार दिन में ही अनुपमा विरह-व्यथा से जर्जर शरीर होकर मन-ही-मन बोली- स्वामी, तुम मुझे ग्रहण करो या न करो, बदले में प्यार दो या न दो, मैं तुम्हारी चिर दासी हूँ। प्राण चले जाएँ यह स्वीकार है, परन्तु तुम्हें किसी भी प्रकार नही छोड़ूंगी। इस जन्म में न पा सकूं तो अगले जन्म में अवश्य पाऊंगी, तब देखोगे सती-साध्वी की क्षूब्द भुजाओं में कितना बल है। अनुपमा बड़े आदमी की लड़की है, घर से संलग्न बगीचा भी है, मनोरम सरोवर भी है, वहाँ चांद भी उठता है, कमल भी खिलते है, कोयल भी गीत गाती है, भौंरे भी गुंजारते हैं, यहाँ पर वह घूमती फिरती विरह व्यथा का अनुभव करने लगी। सिर के बाल खोलकर, अलंकार उतार फेंके, शरीर में धूलि मलकर प्रेम-योगिनी बन, कभी सरोवर के जल में अपना मुंह देखने लगी, कभी आँखों से पानी बहाती हुई गुलाब के फूल को चूमने लगी, कभी आँचल बिछाकर वृक्ष के नीचे सोती हुई हाय की हुताशन और दीर्घ श्वास छोड़ने लगी, भोजन में रुचि नहीं रही, शयन की इच्छा नहीं, साज-सज्जा से बड़ा वैराग्य हो गया, कहानी किस्सों की भांति विरक्ति हो आई, अनुपमा दिन-प्रतिदिन सूखने लगी, देख सुनकर अनु की माता को मन-ही-मन चिन्ता होने लगी, एक ही तो लड़की है, उसे भी यह क्या हो गया? पूछने पर वह जो कहती, उसे कोई भी समझ नहीं पाता, ओठों की बात ओठों पे रह जाती। अनु की माता फिर एक दिन जगबन्धु बाबू से बोली- "अजी, एक बार क्या ध्यान से नहीं देखोगे? तुम्हारी एक ही लड़की है, यह जैसे बिना इलाज के मरी जा रही है।"

जगबन्धु बाबू चकित होकर बोले- "क्या हुआ उसे?"

"सो कुछ नहीं जानती। डॉक्टर आया था, देख-सुनकर बोला- बीमारी-वीमारी कुछ नहीं है।"

"तब ऐसी क्यों हुई जा रही है?" जगबन्धु बाबू विरक्त होते हुए बोले- "फिर हम किस तरह जानें?"

"तो मेरी लड़की मर ही जाए?"

"यह तो बड़ी कठिन बात है। ज्वर नहीं, खाँसी नहीं, बिना बात के ही यदि मर जाए, तो मैं किस तरह से बचाए रहूंगा?" गृहिणी सूखे मुंह से

बड़ी बहू के पास लौटकर बोली- "बहू, मेरी अनु इस तरह से क्यों घूमती रहती है?"

"किस तरह जानूं, माँ?"

"तुमसे क्या कुछ भी नहीं कहती?"

"कुछ नहीं।"

गृहिणी प्रायः रो पड़ी- "तब क्या होगा? बिना खाए, बिना सोए, इस तरह सारे दिन बगीचे में कितने दिन घूमती-फिरती रहेगी, और कितने दिन बचेगी? तुम लोग उसे किसी भी तरह समझाओ, नहीं तो मैं बगीचे के तालाब में किसी दिन डूब मरूंगी।"

बड़ी बहू कुछ देर सोचकर चिन्तित होती हुई बोली- "देख-सुनकर कहीं विवाह कर दो; गृहस्थी का बोझ पड़ने पर अपने आप सब ठीक हो जाएगा।"

"ठीक बात है, तो आज ही यह बात मैं पति को बताऊंगी।"

पति यह बात सुनकर थोड़ा हँसते हुए बोले- "कलिकाल है! कर दो, ब्याह करके ही देखो, यदि ठीक हो जाए।"

(2)

दूसरे दिन घटक आया। अनुपमा बड़े आदमियों की लड़की है, उस पर सुन्दरी भी है; वर के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ी। एक सप्ताह के भीतर ही घटक महाराज ने वर निश्चित करके जगबन्धु बाबू को समाचार दिया। पति ने यह बात पत्नी को बताई। पत्नी ने बड़ी बहू को बताई, क्रमशः अनुपमा ने भी सुनी। दो-एक दिन बाद, एक दिन सब दोपहर के समय मिलकर अनुपमा के विवाह की बातें कर रहे थे। इसी समय वह खुले बाल, अस्त-व्यस्त वस्त्र किए, एक सूखे गुलाब के फूल को हाथ में लिये चित्र की भांति आ खड़ी हुई। अनु की माता कन्या को देखकर तनिक हँसती हुई बोली- ब्याह हो जाने पर यह सब कहीं अन्यत्र चला जाएगा। दो एक लड़का-लड़की होने पर तो कोई बात ही नहीं!

अनुपमा चित्र-लिखित की भांति सब बातें सुनने लगी। बहू ने फिर कहा- "माँ, ननदानी के विवाह का दिन कब निश्चित हुआ है?"

"दिन अभी कोई निश्चित नहीं हुआ।"

"ननदोई जी क्या पढ़ रहे हैं?"

"इस बार बी.ए. की परीक्षा देंगे।"

"तब तो बहुत अच्छा वर है।" इसके बाद थोड़ा हँसकर मजाक करती हुई बोली- "परन्तु देखने में खूब अच्छा न हुआ, तो हमारी ननद जी को पसंद नहीं आएगा।"

"क्यों पसंद नहीं आएगा? मेरा जमाई तो देखने में खूब अच्छा है।"

इस बार अनुपमा ने कुछ गर्दन घुमाई, थोड़ा-सा हिलकर पांव के नख से मिट्टी खोदने की भांति लंगड़ाती-लंगड़ाती बोली- "मैं विवाह नहीं करूंगी।"

माँ ने अच्छी तरह न सुन पाने के कारण पूछा- "क्या है बेटी?"

बड़ी बहू ने अनुपमा की बात सुन ली थी। खूब जोर से हँसते हुए बोली- "ननद जी कहती हैं, वे कभी विवाह नही करेंगी।"

"विवाह नहीं करेगी?"

"नहीं।"

"न करे?"- अनु की माता मुंह बनाकर कुछ हँसती हुई चली गई।

गृहिणी के चले जाने पर बड़ी बहू बोली- "तुम विवाह नहीं करोगी?"

अनुपमा पूर्ववत् गम्भीर मुंह किए बोली- "किसी प्रकार भी नहीं।"

"क्यों?"

"चाहे जिसे हाथ पकड़ा देने का नाम ही विवाह नहीं है। मन का मिलन न होने पर विवाह करना भूल है!"

बड़ी बहू चकित होकर अनुपमा के मुंह की ओर देखती हुई बोली- "हाथ पकड़ा देना क्या बात होती है? पकड़ा नहीं देंगे तो क्या लड़कियाँ स्वयं ही देख-सुनकर पसंद करने के बाद विवाह करेंगी?"

"अवश्य!"

"तब तो तुम्हारे मत के अनुसार, मेरा विवाह भी एक तरह की भूल हो गया? विवाह के पहले तो तुम्हारे भाई का नाम तक मैंने नहीं सुना था।"

"सभी क्या तुम्हारी ही भांति हैं?"

बहू एक बार फिर हँसकर बोली- "तब क्या तुम्हारे मन का कोई आदमी मिल गया है?"

अनुपमा बड़ी बहू के हास्य-विद्रूप से चिढ़कर अपने मुंह को चौगुना गम्भीर करती हुई बोली- "भाभी मजाक क्यों कर रही हो, यह क्या मजाक का समय है?"

"क्यों क्या हो गया?"

"क्या हो गया? तो सुनो..." अनुपमा को लगा, उसके सामने ही उसके पति का वध किया जा रहा है, अचानक कतलू खाँ के किले में, वध के मंच के सामने खड़े हुए विमला और वीरेन्द्र सिंह का दृश्य उसके मन में जग उठा; अनुपमा ने सोचा, वे लोग जैसा कर सकते हैं, वैसा क्या वह नहीं कर सकती? सती-स्त्री संसार में किसका भय करती है?

देखते-देखते उसकी आँखें अनैसर्गिक प्रभा से धक्-धक् करके जल उठीं, देखते-देखते उसने आँचल को कमर में लपेटकर कमरबन्द बांध लिया। यह दृश्य देखकर बहू तीन हाथ पीछे हट गई। क्षण भर में अनुपमा बगल वाले पलंग के पाये को जकड़कर, आँखें ऊपर उठाकर, चीत्कार करती हुई कहने लगी- "प्रभु, स्वामी, प्राणनाथ! संसार के सामने आज मैं मुक्त-कण्ठ से चीत्कार करती हूँ, तुम्हीं मेरे प्राणनाथ हो! प्रभु तुम मेरे हो, मैं तुम्हारी हूँ। यह खाट के पाए नहीं, ये तुम्हारे दोनों चरण हैं, मैने धर्म को साक्षी करके तुम्हें पति-रूप में वरण किया है, इस समय भी तुम्हारे चरणों को स्पर्श करती हुई कह रही हूँ, इस संसार में तुम्हें छोड़कर अन्य कोई भी पुरुष मुझे स्पर्श नहीं कर सकता। किसमें शक्ति है कि प्राण रहते हमें अलग कर सके। अरी माँ, जगत जननी...!"

बड़ी बहू चीत्कार करती हुई दौड़ती बाहर आ पड़ी- "अरे, देखते हो, ननदरानी कैसा ढंग अपना रही हैं।"

देखते-देखते गृहिणी भी दौड़ी आई। बहूरानी का चीत्कार बाहर तक जा पहुँचा था- "क्या हुआ, क्या हुआ, क्या हो गया?" कहते गृहस्वामी

और उनके पुत्र चन्द्रबाबू भी दौड़े आए। कर्ता-गृहिणी, पुत्र, पुत्रवधू और दास-दासियों से क्षण भर में घर में भीड़ हो गई। अनुपमा मूर्छित होकर खाट के समीप पड़ी हुई थी। गृहिणी रो उठी- "मेरी अनु को क्या हो गया? डॉक्टर को बुलाओ, पानी लाओ, हवा करो इत्यादि। इस चीत्कार से आधे पड़ोसी घर में जमा हो गए।"

बहुत देर बाद आँखें खोलकर अनुपमा धीरे-धीरे बोली- "मैं कहाँ हूँ?"

उसकी माँ उसके पास मुंह लाती हुई स्नेहपूर्वक बोली- "कैसी हो बेटी? तुम मेरी गोदी में लेटी हो।"

अनुपमा दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई धीरे-धीरे बोली- "ओह तुम्हारी गोदी में? मैं समझ रही थी, कहीं अन्यत्र स्वप्न-नाट्य में उनके साथ बही जा रही थी? पीड़ा-विगलित अश्रु उसके कपोलों पर बहने लगे।"

माता उन्हें पोंछती हुई कातर-स्वर में बोली- "क्यों रो रही हो, बेटी?"

अनुपमा दीर्घ निःश्वास छोड़कर चुप रह गई। बड़ी बहू चन्द्रबाबू को एक ओर बुलाकर बोली- सबको जाने को कह दो, ननदरानी ठीक हो गई हैं। क्रमशः सब लोग चले गए।

(3)

रात को बहू अनुपमा के पास बैठकर बोली- "ननदरानी, किसके साथ विवाह होने पर तुम सुखी होओगी?"

अनुपमा आँखें बन्द करके बोली- "सुख-दुख मुझे कुछ नहीं है, वही मेरे स्वामी हैं..."

"सो तो मैं समझती हूँ, परन्तु वे कौन हैं?"

"सुरेश! मेरे सुरेश..."

"सुरेश! राखाल मजूमदार के लड़के?"

"हाँ, वे ही।"

रात में ही गृहिणी ने यह बात सुनी। दूसरे दिन सवेरे ही मजूमदार के घर जा उपस्थित हुई। बहुत-सी बातों के बाद सुरेश की माता से बोली- "अपने लड़के के साथ मेरी लड़की का विवाह कर लो।"

सुरेश की माता हँसती हुई बोलीं- "बुरा क्या है?"

"बुरे-भले की बात नहीं, विवाह करना ही होगा!"

"तो सुरेश से एक बार पूछ आऊँ। वह घर में ही है, उसकी सम्मति होने पर पति को असहमति नहीं होगी।"

सुरेश उस समय घर में रहकर बी.ए. की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, एक क्षण उसके लिए एक वर्ष के समान था। उसकी माँ ने विवाह की बात कही, मगर उसके कान में नहीं पड़ी। गृहिणी ने फिर कहा- "सुरो, तुझे विवाह करना होगा।"

सुरेश मुंह उठाकर बोला- "वह तो होगा ही! परन्तु अभी क्यों? पढ़ने के समय यह बातें अच्छी नहीं लगतीं।"

गृहिणी अप्रतिभ होकर बोली-"नहीं, नहीं, पढ़ने के समय क्यों? परीक्षा समाप्त हो जाने पर विवाह होगा।"

"कहाँ?"

"इसी गांव में जगबन्धु बाबू की लड़की के साथ।"

"क्या? चन्द्र की बहन के साथ? जिसे मैं बच्ची कहकर पुकारता हूँ?"

"बच्ची कहकर क्यों पुकारेगा, उसका नाम अनुपमा है।"

"सुरेश थोड़ा हँसकर बोला- हाँ, अनुपमा! दुर वह? दुर, वह तो बड़ी कुत्सित है!"

"कुत्सित कैसे हो जाएगी? वह तो देखने में अच्छी है!"

"भले ही देखने में अच्छी! एक ही जगह ससुराल और पिता का घर होना, मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"क्यों? उसमें और क्या दोष है?"

"दोष की बात का कोई मतलब नहीं! तुम इस समय जाओ माँ, मैं थोड़ा पढ़ लूँ, इस समय कुछ भी नहीं होगा!"

सुरेश की माता वापस आकर बोलीं- "सुरो तो एक ही गांव में किसी प्रकार भी विवाह नहीं करना चाहता।"

"क्यों?"

"सो तो नहीं जानती!"

अनु की माता, मजूमदार की गृहिणी का हाथ पकड़कर कातर भाव से बोलीं- "यह नहीं होगा, बहन! यह विवाह तुम्हें करना ही पड़ेगा।"

"लड़का तैयार नहीं है; मैं क्या करूँ, बताओ?"

"न होने पर भी मैं किसी तरह नहीं छोड़ूंगी।"

"तो आज ठहरो, कल फिर एक बार समझा देखूंगी, यदि सहमत कर सकी।"

अनु की माता घर लौटकर जगबन्धु बाबू से बोलीं- "उनके सुरेश के साथ हमारी अनुपमा का जिस तरह विवाह हो सके, वह करो!"

"पर क्यों, बताओ तो? राम गांव में तो एक तरह से सब निश्चित हो चुका है! उस सम्बन्ध को तोड़ दें क्या?"

"कारण है।"

"क्या कारण है?"

"कारण कुछ नहीं, परन्तु सुरेश जैसा रूप-गुण-सम्पन्न लड़का हमें कहाँ मिल सकता है? फिर, मेरी एक ही तो लड़की है, उसे दूर नहीं ब्याहूंगी। सुरेश के साथ ब्याह होने पर, जब चाहूंगी, तब उसे देख सकूंगी।"

"अच्छा प्रयत्न करूंगा।"

"प्रयत्न नहीं, निश्चित रूप से करना होगा।"

पति नथ का हिलना-डुलना देखकर हँस पड़े। बोले- "यही होगा जी।"

संध्या के समय पति मजूमदार के घर से वापस आकर गृहिणी से बोले- "वहाँ विवाह नहीं होगा... मैं क्या करूँ, बताओ उनके तैयार न होने पर मैं जबरदस्ती तो उन लोगों के घर में लड़की को नहीं फेंक आऊंगा!"

"करेंगे क्यों नहीं?"

"एक ही गांव में विवाह करने का उनका विचार नहीं है।"

गृहिणी अपने मस्तिष्क पर हाथ मारती हुई बोली- "मेरे ही भाग्य का दोष है।"

(4)

दूसरे दिन वह फिर सुरेश की माँ के पास जाकर बोली- "दीदी, विवाह कर लो।"

"मेरी भी इच्छा है; परन्तु लड़का किस तरह तैयार हो?"

"मैं छिपाकर सुरेश को और भी पाँच हजार रुपए दूंगी।"

रुपयों का लोभ बड़ा प्रबल होता है। सुरेश की माँ ने यह बात सुरेश के पिता को जताई। पति ने सुरेश को बुलाकर कहा- "सुरेश, तुम्हें यह विवाह करना ही होगा।"

"क्यों?"

"क्यों, फिर क्यों? इस विवाह में तुम्हारी माँ का मत ही मेरा भी मत है, साथ-ही-साथ एक कारण भी हो गया है।"

सुरेश सिर नीचा किए बोला-"यह पढ़ने-लिखने का समय है, परीक्षा की हानि होगी।"

"उसे मैं जानता हूँ, बेटा! पढ़ाई-लिखाई की हानि करने के लिए तुमसे नहीं कह रहा हूँ। परीक्षा समाप्त हो जाने पर विवाह करो।"

"जो आज्ञा!"

अनुपमा की माता की आनन्द की सीमा न रही। फौरन यह बात उन्होंने पति से कही। मन के आनन्द के कारण दास-दासी सभी को यह बात बताई। बड़ी बहू ने अनुपमा को बुलाकर कहा- "यह लो! तुम्हारे मन चाहे वर को पकड़ लिया है।"

अनुपमा लज्जापूर्वक थोड़ा हँसती हुई बोली- "यह तो मैं जानती थी!"

"किस तरह जाना? चिट्ठी-पत्री चलती थी क्या?"

"प्रेम अन्तर्यामी है! हमारी चिट्ठी-पत्री हृदय में चला करती है।"

"धन्य हो, तुम जैसी लड़की!"

अनुपमा के चले जाने पर बड़ी बहू ने धीरे-धीरे मानो अपने आप से कहा, "देख-सुनकर शरीर जलने लगता है। मैं तीन बच्चों की माँ हूँ और यह आज मुझे प्रेम सिखाने आई है।"

काबुलीवाला
रवीन्द्रनाथ टैगोर

(1)

मेरी पाँच वर्ष की छोटी लड़की मिनी से पलभर भी बात किए बिना नहीं रहा जाता। दुनिया में आने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ एक ही वर्ष लगाया होगा। उसके बाद से जितनी देर तक सो नहीं पाती है, उस समय का एक पल भी वह चुप्पी में नहीं खोती। उसकी माता बहुधा डाँट-फटकारकर उसकी चलती हुई जबान बन्द कर देती है; किन्तु मुझसे ऐसा नहीं होता। मिनी का मौन मुझे ऐसा अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, कि मुझसे वह अधिक देर तक सहा नहीं जाता और यही कारण है कि मेरे साथ उसके भावों का आदान-प्रदान कुछ अधिक उत्साह के साथ होता रहता है।

सवेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में हाथ लगाया ही था कि इतने में मिनी ने आकर कहना आरम्भ कर दिया– "बाबूजी! रामदयाल दरबान कल 'काक' को कौआ कहता था। वह कुछ जानता ही नहीं, न बाबूजी?"

विश्व की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मेरे कुछ बताने से पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया– "बाबूजी! भोला कहता था आकाश मुंह से पानी फेंकता है, इसी से बरसा होती है। अच्छा बाबूजी, भोला झूठ-मूठ कहता है न? खाली बक-बक किया करता है, दिन-रात बकता रहता है।"

इस विषय में मेरी राय की तनिक भी राह न देखकर, चट से धीमे स्वर में एक जटिल प्रश्न कर बैठी, "बाबूजी, माँ तुम्हारी कौन लगती है?"

मन ही मन में मैंने कहा– साली और फिर बोला– "मिनी, तू जा, भोला के साथ खेल, मुझे अभी काम है, अच्छा।"

तब उसने मेरी मेज के पार्श्व में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटने और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी शीघ्रता से मुंह चलाकर 'अटकन-बटकन

दही चटाके' कहना आरम्भ कर दिया। जबकि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह उस समय कंचनमाला को लेकर रात्रि के प्रगाढ़ अंधकार में बन्दीगृह के ऊँचे झरोखे से नीचे कलकल करती हुई सरिता में कूद रहे थे।

मेरा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन-बटकन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गई, और जोर-जोर से चिल्लाने लगी- "काबुलवाला, ओ काबुलवाला।"

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिर पर कुल्ला रखे, उस पर साफा बांधे कन्धे पर सूखे फलों की मैली झोली लटकाए, हाथ में चमन के अंगूरों की कुछ पिटारियां लिए, एक लम्बा-तगड़ा-सा काबुली मन्द चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी छोटी बेटी के हृदय में कैसे भाव उदय हुए यह बताना असम्भव है। उसने जोरों से पुकारना शुरू किया। मैंने सोचा, अभी झोली कन्धे पर डाले, सर पर एक मुसीबत आ खड़ी होगी और मेरा सत्रहवां अध्याय आज अधूरा रह जाएगा।

किन्तु मिनी के चिल्लाने पर ज्यों ही काबुली ने हँसते हुए उसकी ओर मुंह फेरा और घर की ओर बढ़ने लगा; त्यों ही मिनी भय खाकर भीतर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहाँ छिप गई। उसके छोटे-से मन में वह अंधविश्वास बैठ गया था कि उस मैली-कुचैली झोली के अन्दर ढूँढने पर उस जैसी और भी जीती-जागती बच्चियां निकल सकती हैं।

इधर काबुली ने आकर मुस्कराते हुए मुझे हाथ उठाकर अभिवादन किया और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, वास्तव में प्रतापसिंह और कंचनमाला की दशा अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा।

कुछ सौदा खरीदा गया। उसके बाद मैं उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। खुद रहमत, रूस, अंग्रेज, सीमान्त रक्षा के बारे में गप-शप होने लगी।

अन्त में उठकर जाते हुए उसने अपनी मिली-जुली भाषा में पूछा- "बाबूजी, आपकी बच्ची कहाँ गई?"

मैंने मिनी के मन से व्यर्थ का भय दूर करने के अभिप्राय से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिलकुल लगकर काबुली के मुख और

झोली की ओर सन्देहात्मक दृष्टि डालती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किसमिस और खुबानी निकालकर देना चाहा, पर उसने नहीं लिया और दुगुने सन्देह के साथ मेरे घुटनों से लिपट गई। उसका पहला परिचय इस प्रकार हुआ।

(2)

इस घटना के कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे मैं किसी आवश्यक कार्यवश बाहर जा रहा था। देखूं तो मेरी बिटिया दरवाजे के पास बेंच पर बैठी हुई काबुली से हँस-हँसकर बातें कर रही है और काबुली उसके पैरों के समीप बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ, उन्हें ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में अपनी राय मिली-जुली भाषा में व्यक्त करता जाता है। मिनी को अपने पाँच वर्ष के जीवन में, बाबूजी के सिवा, ऐसा धैर्य वाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो। देखा तो, उसका फिराक का अग्रभाग बादाम-किसमिस से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा– "इसे यह सब क्यों दे दिया? अब कभी मत देना।" कहकर कुर्ते की जेब से एक अठन्नी निकालकर उसे दी। उसने बिना किसी हिचक के अठन्नी लेकर अपनी झोली में रख ली।

कुछ देर बाद, घर लौटकर देखता हूँ तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनी की माँ एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ हाथ में लिए डाँट-डपटकर मिनी से पूछ रही थी– "तूने यह अठन्नी पाई कहाँ से, बता?"

मिनी ने कहा– "काबुल वाले ने दी है।"

"काबुल वाले से तूने अठन्नी ली कैसे, बता?"

मिनी ने रोने का उपक्रम करते हुए कहा– "मैंने मांगी नहीं थी, उसने आप ही दी है।"

मैंने जाकर मिनी की उस अकस्मात मुसीबत से रक्षा की, और उसे बाहर ले आया।

मालूम हुआ कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी ही भेंट थी, सो बात नहीं। इस दौरान में वह रोज आता रहा है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे-देकर मिनी के छोटे से हृदय पर बहुत अधिकार कर लिया है।

देखा कि इस नई मित्रता में बंधी हुई बातें और हँसी ही प्रचलित है। जैसे मेरी बिटिया, रहमत को देखते ही, हँसती हुई पूछती– "काबुल वाला, ओ काबुल वाला, तुम्हारी झोली के भीतर क्या है?" काबुली, जिसका नाम रहमत था, एक अनावश्यक चन्द्र-बिन्दु जोड़कर मुस्कराता हुआ उत्तर देता– "हाँ बिटिया" उसके परिहास का रहस्य क्या है, यह तो नहीं कहा जा सकता; फिर भी इन नए मित्रों को इससे तनिक विशेष खेल-सा प्रतीत होता है और जाड़े के प्रभात में एक सयाने और एक बच्ची की सरल हँसी सुनकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उन दोनों मित्रों में और भी एक-आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता– "तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा?"

हमारे देश की लड़कियाँ जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं; किन्तु हम लोग तनिक कुछ नई रोशनी के होने के कारण तनिक-सी बच्ची को ससुराल के विषय में विशेष ज्ञानी नहीं बना सके थे, अतः रहमत का अनुरोध वह स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती थी; इस पर भी किसी बात का उत्तर दिए बिना चुप रहना उसके स्वभाव के बिलकुल ही विरुद्ध था। उलटे, वह रहमत से ही पूछती– "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत काल्पनिक श्वसुर के लिए अपना जबरदस्त घूंसा तानकर कहता– "हम ससुर को मारेगा।"

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अनजाने जीव की दुरवस्था की कल्पना करके खूब हँसती।

(3)

देखते-देखते जाड़े की सुहावनी ऋतु आ गई। पूर्व युग में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिए कूच करते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कभी कहीं

नहीं गया, शायद इसीलिए मेरा मन ब्रह्माण्ड में घूमा करता है। यानी, मैं अपने घर में ही चिर प्रवासी हूँ, बाहरी ब्रह्माण्ड के लिए मेरा मन सर्वदा आतुर रहता है। किसी विदेश का नाम आगे आते ही मेरा मन वहीं की उड़ान लगाने लगता है। इसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही तत्काल मेरा मन सरिता-पर्वत-बीहड़ वन के बीच में एक कुटीर का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वतंत्र जीवन-यात्रा की बात कल्पना में जाग उठती है।

इधर देखा तो मैं ऐसी प्रकृति का प्राणी हूँ, जिसका अपना घर छोड़कर बाहर निकलने में सिर कटता है। यही कारण है कि सवेरे के समय अपने छोटे-से कमरे में मेज के सामने बैठकर उस काबुली से गप-शप लड़ाकर बहुत कुछ भ्रमण का काम निकाल लिया करता हूँ। मेरे सामने काबुल का पूरा चित्र खिंच जाता। दोनों ओर ऊबड़-खाबड़, लाल-लाल ऊँचे दुर्गम पर्वत हैं और रेगिस्तानी मार्ग, उन पर लदे हुए ऊंटों की कतार जा रही है। ऊँचे-ऊँचे साफे बांधे हुए सौदागर और यात्री कुछ ऊंट की सवारी पर हैं तो कुछ पैदल ही जा रहे हैं। किन्हीं के हाथों में बरछा है, तो कोई बाबा आदम के जमाने की पुरानी बन्दूक थामे हुए है। बादलों की भयानक गर्जन के स्वर में काबुली लोग अपने मिली-जुली भाषा में अपने देश की बातें कर रहे हैं।

मिनी की माँ बड़ी वहमी तबीयत की है। राह में किसी प्रकार का शोर-गुल हुआ नहीं कि उसने समझ लिया कि संसार भर के सारे मस्त शराबी हमारे ही घर की ओर दौड़े आ रहे हैं। उसके विचारों में यह दुनिया इस छोर से उस छोर तक चोर-डकैत, मस्त, शराबी, साँप, बाघ, रोगों, मलेरिया, तिलचट्टे और अंग्रेजों से भरी पड़ी है। इतने दिन हुए इस दुनिया में रहते हुए भी उसके मन का यह रोग दूर नहीं हुआ।

रहमत काबुली की ओर से भी वह पूरी तरह निश्चिन्त नहीं थी। उस पर विशेष नजर रखने के लिए मुझसे बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैं उसके शक को परिहास के आवरण से ढकना चाहता तो मुझसे एक साथ कई प्रश्न पूछ बैठती- "क्या कभी किसी का लड़का नहीं चुराया गया? क्या काबुल में गुलाम नहीं बिकते? क्या एक लम्बे-तगड़े काबुली के लिए एक छोटे बच्चे का उठा ले जाना असम्भव है?" इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता कि यह बात नितान्त असम्भव हो सो बात नहीं पर भरोसे के काबिल नहीं। भरोसा करने की शक्ति सब में समान नहीं होती, अतः मिनी की माँ के मन में भय ही रह गया लेकिन केवल इसीलिए बिना किसी दोष के रहमत को अपने घर में आने से मना न कर सका।

हर वर्ष रहमत माघ मास में लगभग अपने देश लौट जाता है। इस समय वह अपने व्यापारियों से रुपया-पैसा वसूल करने में तल्लीन रहता है। उसे घर-घर, दुकान-दुकान घूमना पड़ता है, फिर भी मिनी से उसकी भेंट एक बार अवश्य हो जाती है। देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य किसी षड्यंत्र का श्रीगणेश हो रहा है। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन देखूँ तो वह संध्या को हाजिर है। अंधेरे में घर के कोने में उस ढीले-ढाले जामा-पाजामा पहने, झोली वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देखकर सचमुच ही मन में अचानक भय-सा पैदा हो जाता है।

लेकिन, जब देखता हूँ कि मिनी 'ओ काबुल वाला' पुकारती हुई हँसती-हँसती दौड़ी आती है और दो भिन्न-भिन्न आयु के असम मित्रों में वही पुराना हास-परिहास चलने लगता है, तब मेरा सारा हृदय खुशी से नाच उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ नई पुस्तक के प्रूफ देख रहा था। जाड़ा, विदा होने से पूर्व, आज दो-तीन दिन खूब जोरों से अपना प्रकोप दिखा रहा है। जिधर देखो, उधर उस जाड़े की ही चर्चा है। ऐसे जाड़े-पाले में खिड़की में से सवेरे की धूप मेज के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी। उसकी गर्मी मुझे अच्छी प्रतीत होने लगी। लगभग आठ बजे का समय होगा। सिर से मफलर लपेटे ऊषाचरण सवेरे की सैर करके घर की ओर लौट रहे थे। ठीक इस समय राह में एक बड़े जोर का शोर सुनाई दिया।

देखूँ तो अपने उस रहमत को दो सिपाही बांधे लिए जा रहे हैं। उनके पीछे बहुत से तमाशाई बच्चों का झुंड चला आ रहा है। रहमत के ढीले-ढाले कुर्ते पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से लथपथ छुरा। मैंने द्वार से बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया, पूछा- "क्या बात है?"

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत से सुना कि हमारे एक पड़ोसी ने रहमत से रामपुरी चादर खरीदी थी। उसके कुछ रुपए उसकी ओर बाकी

थे, जिन्हें देने से उसने साफ इंकार कर दिया। बस इसी पर दोनों में बात बढ़ गई और रहमत ने छुरा निकालकर घोंप दिया।

रहमत उस झूठे बेईमान आदमी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अपशब्द सुना रहा था। इतने में 'काबुल वाला! ओ काबुल वाला!' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

रहमत का चेहरा क्षण-भर में कौतुक हास्य से चमक उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी। अतः झोली के बारे में दोनों मित्रों की अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनी ने आते के साथ ही उससे पूछा- "तुम ससुराल जाओगे।"

रहमत ने प्रफुल्लित मन से कहा- "हाँ, वहीं तो जा रहा हूँ।"

रहमत ताड़ गया कि उसका यह जवाब मिनी के चेहरे पर हँसी न ला सकेगा और तब उसने हाथ दिखाकर कहा- "ससुर को मारता, पर क्या करूँ, हाथ बंधे हुए हैं।"

छुरा चलाने के जुर्म में रहमत को कई वर्ष का कारावास मिला।

रहमत का ध्यान धीरे-धीरे मन से बिलकुल उतर गया। हम लोग अब अपने घर में बैठकर सदा के अभ्यस्त होने के कारण, नित्य के काम-धंधों में उलझे हुए दिन बिता रहे थे। तभी एक स्वाधीन पर्वतों पर घूमने वाला इन्सान कारागार की प्राचीरों के अन्दर कैसे वर्ष पर वर्ष काट रहा होगा, यह बात हमारे मन में कभी उठी ही नहीं।

और चंचल मिनी का आचरण तो और भी लज्जाप्रद था। यह बात उसके पिता को भी माननी पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भूलकर पहले तो नबी सईस के साथ मित्रता जोड़ी, फिर क्रमशः जैसे-जैसे उसकी वयोवृद्धि होने लगी वैसे-वैसे सखा के बदले एक के बाद एक उसकी सखियां जुटने लगीं और तो क्या, अब वह अपने बाबूजी के लिखने के कमरे में भी दिखाई नहीं देती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ नाता ही टूट गया है।

(4)

कितने ही वर्ष बीत गये। वर्षों बाद आज फिर शरद ऋतु आई है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गई। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जाएगा। कैलाशवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी माँ-बाप के घर में अंधेरा करके ससुराल चली जाएगी।

सवेरे दिवाकर बड़ी सज-धज के साथ निकले। वर्षों के बाद शरद ऋतु की यह नई धवल धूप सोने में सुहागे का काम दे रही है। कलकत्ता की संकरी गलियों से परस्पर सटे हुए पुराने ईटझर गन्दे घरों के ऊपर भी इस धूप की आभा ने एक प्रकार का अनोखा सौन्दर्य बिखेर दिया है।

हमारे घर पर दिवाकर के आगमन से पूर्व ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे यह मेरे हृदय की धड़कनों में से रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानो मेरी विच्छेद पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ सारे ब्रह्माण्ड में फैला रही है। मेरी मिनी का आज विवाह है।

सवेरे से घर बवंडर बना हुआ है। हर समय आने-जाने वालों का तांता बंधा हुआ है। आंगन में बांसों का मंडप बनाया जा रहा है। हरेक कमरे और बरामदे में झाड़-फानूस लटकाए जा रहे हैं, और उनकी टक-टक की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'चलो रे', 'जल्दी करो', 'इधर आओ' की तो कोई गिनती ही नहीं है।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान न सका। उसके पास न तो झोली थी और न पहले जैसे लम्बे-लम्बे बाल और न चेहरे पर पहले जैसी दिव्य ज्योति ही थी। अन्त में उसकी मुस्कान देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा- "क्यों रहमत, कब आए?"

उसने कहा- "कल शाम को जेल से छूटा हूँ।"

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानों में खट से बज उठे। किसी खूनी को मैंने कभी आँखों से नहीं देखा था, उसे देखकर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड़-सा गया। मेरी यही इच्छा होने लगी कि आज के इस शुभ दिन में वह इंसान यहाँ से टल जाए तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा– "आज हमारे घर में कुछ आवश्यक काम है, सो आज मैं उसमें लगा हुआ हूँ। आज तुम जाओ, फिर आना।"

मेरी बात सुनकर वह उसी क्षण जाने को तैयार हो गया। पर द्वार के पास आकर कुछ इधर-उधर देखकर बोला– "क्या, बच्ची को तनिक नहीं देख सकता?"

शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा हो कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुल वाला, ओ काबुल वाला' पुकारती हुई दौड़ी चली आएगी। उन दोनों के पहले हास-परिहास में किसी प्रकार की रुकावट न होगी? यहाँ तक कि पहले की मित्रता को याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागज के दोने में थोड़ी-सी किसमिस और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से मांग-तांगकर लेता आया था। उसकी पहले की मैली-कुचैली झोली आज उसके पास न थी।

मैंने कहा– "आज घर में बहुत काम है। सो किसी से भेंट न हो सकेगी।"

मेरा उत्तर सुनकर वह कुछ उदास-सा हो गया। उसी मुद्रा में उसने एक बार मेरे मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। फिर अभिवादन करके दरवाजे के बाहर निकल गया।

मेरे हृदय में जाने कैसी एक वेदना-सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊँ, इतने में देखा तो वह स्वयं ही आ रहा है।

वह पास आकर बोला– "ये अंगूर और कुछ किसमिस, बादाम बच्ची के लिए लाया था, उसको दे दीजिएगा।"

मैंने उसके हाथ से सामान लेकर पैसे देने चाहे, लेकिन उसने मेरे हाथ को थामते हुए कहा– "आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू साहब, हमेशा याद रहेगी, पिसा रहने दीजिए।" तनिक रुककर फिर बोला– "बाबू साहब!

आपकी जैसी मेरी भी देश में एक बच्ची है। मैं उसकी याद कर-कर आपकी बच्ची के लिए थोड़ी-सी मेवा हाथ में ले आया करता हूँ। मैं यह सौदा बेचने नहीं आता।"

कहते हुए उसने ढीले-ढाले कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर छाती के पास से एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला, और बड़े जतन से उसकी चारों तहें खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी मेज पर रख दिया।

देखा कि कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे-से हाथ के छोटे-से पंजे की छाप है। फोटो नहीं, तेलचित्र नहीं, हाथ में-थोड़ी-सी कालिख लगाकर कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है। अपनी बेटी के इस स्मृति-पत्र को छाती से लगाकर, रहमत हर वर्ष कलकत्ता के गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है और तब वह कालिख चित्र मानो उसकी बच्ची के हाथ का कोमल-स्पर्श, उसके बिछड़े हुए विशाल वक्षःस्थल में अमृत उड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आँखें भर आईं और फिर मैं इस बात को बिलकुल ही भूल गया कि वह एक मामूली काबुली मेवा वाला है, मैं एक उच्च वंश का रईस हूँ। तब मुझे ऐसा लगने लगा कि जो वह है, वही मैं हूँ। वह भी एक बाप है और मैं भी। उसकी पर्वतवासिनी छोटी बच्ची की निशानी मेरी ही मिनी की याद दिलाती है। मैंने तत्काल ही मिनी को बाहर बुलवाया; हालांकि इस पर अन्दर घर में आपत्ति की गई, पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। विवाह के वस्त्रों और अलंकारों में लिपटी हुई बेचारी मिनी मारे लज्जा के सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उस अवस्था में देखकर रहमत काबुल पहले तो सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत न करते बना। बाद में हँसते हुए बोला– "लल्ली! सास के घर जा रही है क्या?"

मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी, अतः अब उससे पहले की तरह उत्तर देते न बना। रहमत की बात सुनकर मारे लज्जा के उसके कपोल लाल हो उठे। उसने मुंह को फेर लिया। मुझे उस दिन की याद आई, जब

रहमत के साथ मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन में एक पीड़ा की लहर दौड़ गई।

मिनी के चले जाने के बाद, एक गहरी साँस लेकर रहमत फर्श पर बैठ गया। शायद उसकी समझ में यह बात एकाएक साफ हो गई कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी, और उसके साथ भी उसे अब फिर से नई जान-पहचान करनी पड़ेगी। सम्भवतः वह उसे पहले जैसी नहीं पाएगा। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने? सवेरे के समय शरद की स्निग्ध सूर्य किरणों में शहनाई बजने लगी और रहमत कलकत्ता की एक गली के भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तान के मेरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकालकर उसके हाथ में दिया और कहा- "रहमत, तुम देश चले जाओ, अपनी लड़की के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी सुख पाएगी।"

रहमत को रुपए देने के बाद विवाह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो-एक अंग काट-छांटकर देने पड़े। जैसी मन में थी, वैसी रोशनी नहीं करा सका, अंग्रेजी बाजा भी नहीं आया, घर में औरतें बड़ी बिगड़ने लगीं, सब कुछ हुआ, फिर भी मेरा विचार है कि आज एक अपूर्व ज्योत्स्ना से हमारा शुभ समारोह उज्ज्वल हो उठा।

भिखारिन
रवीन्द्रनाथ टैगोर

(1)

अंधी प्रतिदिन मन्दिर के दरवाजे पर जाकर खड़ी होती, दर्शन करने वाले बाहर निकलते तो वह अपना हाथ फैला देती और नम्रता से कहती– बाबूजी, अंधी पर दया हो जाए।

वह जानती थी कि मन्दिर में आने वाले सहृदय और श्रद्धालु हुआ करते हैं। उसका यह अनुमान असत्य न था। आने-जाने वाले दो-चार पैसे उसके हाथ पर रख ही देते। अंधी उनको दुआएँ देती और उनको सहृदयता को सराहती। स्त्रियाँ भी उसके पल्ले में थोड़ा-बहुत अनाज डाल जाया करती थीं।

प्रातः से संध्या तक वह इसी प्रकार हाथ फैलाए खड़ी रहती। उसके पश्चात् मन-ही-मन भगवान को प्रणाम करती और अपनी लाठी के सहारे झोंपड़ी का पथ ग्रहण करती। उसकी झोंपड़ी नगर से बाहर थी। रास्ते में भी याचना करती जाती किन्तु राहगीरों में अधिक संख्या श्वेत वस्त्रों वालों की होती, जो पैसे देने की अपेक्षा झिड़कियां दिया करते हैं। तब भी अंधी निराश न होती और उसकी याचना बराबर जारी रहती। झोंपड़ी तक पहुँचते-पहुँचते उसे दो-चार पैसे और मिल जाते।

झोंपड़ी के समीप पहुँचते ही एक दस वर्ष का लड़का उछलता-कूदता आता और उससे चिपट जाता। अंधी टटोलकर उसके मस्तक को चूमती।

बच्चा कौन है? किसका है? कहाँ से आया? इस बात से कोई परिचय नहीं था। पाँच वर्ष हुए पास-पड़ोस वालों ने उसे अकेला देखा था। इन्हीं दिनों एक दिन संध्या-समय लोगों ने उसकी गोद में एक बच्चा देखा, वह रो रहा था, अंधी उसका मुख चूम-चूमकर उसे चुप कराने का प्रयत्न कर रही थी। वह कोई असाधारण घटना न थी, अतः किसी ने भी न पूछा कि

बच्चा किसका है। उसी दिन से यह बच्चा अंधी के पास था और प्रसन्न था। उसको वह अपने से अच्छा खिलाती और पहनाती।

अंधी ने अपनी झोंपड़ी में एक हांडी गाड़ रखी थी। संध्या-समय जो कुछ मांगकर लाती उसमें डाल देती और उसे किसी वस्तु से ढांप देती। इसलिए कि दूसरे व्यक्तियों की दृष्टि उस पर न पड़े। खाने के लिए अन्न काफी मिल जाता था। उससे काम चलाती। पहले बच्चे को पेट भरकर खिलाती फिर स्वयं खाती। रात को बच्चे को अपने वक्ष से लगाकर वहीं पड़ी रहती। प्रातःकाल होते ही उसको खिला-पिलाकर फिर मन्दिर के द्वार पर जा खड़ी होती।

(2)

काशी में सेठ बनारसीदास बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। बच्चा-बच्चा उनकी कोठी से परिचित है। बहुत बड़े देशभक्त और धर्मात्मा हैं। धर्म में उनकी बड़ी रुचि है। दिन के बारह बजे तक सेठ स्नान-ध्यान में संलग्न रहते। कोठी पर हर समय भीड़ लगी रहती। कर्ज के इच्छुक तो आते ही थे, परन्तु ऐसे व्यक्तियों का भी तांता बंधा रहता जो अपनी पूंजी सेठजी के पास धरोहर रूप में रखने आते थे। सैंकड़ों भिखारी अपनी जमा-पूंजी इन्हीं सेठजी के पास जमा कर जाते। अंधी को भी यह बात ज्ञात थी, किन्तु पता नहीं अब तक वह अपनी कमाई यहाँ जमा कराने में क्यों हिचकिचाती रही।

उसके पास काफी रुपए हो गए थे, हांडी लगभग पूरी भर गई थी। उसको शंका थी कि कोई चुरा न ले। एक दिन संध्या-समय अंधी ने वह हांडी उखाड़ी और अपने फटे हुए आँचल में छिपाकर सेठजी की कोठी पर पहुँची।

सेठजी बही-खाते के पृष्ठ उलट रहे थे, उन्होंने पूछा- क्या है बुढ़िया?

अंधी ने हांडी उनके आगे सरका दी और डरते-डरते कहा- सेठजी, इसे अपने पास जमा कर लो, मैं अंधी, अपाहिज कहाँ रखती फिरूंगी?

सेठजी ने हांडी की ओर देखकर कहा- इसमें क्या है?

अंधी ने उत्तर दिया– भीख मांग-मांगकर अपने बच्चे के लिए दो-चार पैसे संग्रह किये हैं, अपने पास रखते डरती हूँ, कृपया इन्हें आप अपनी कोठी में रख लें।

सेठजी ने मुनीम की ओर संकेत करते हुए कहा– बही में जमा कर लो। फिर बुढ़िया से पूछा- तेरा नाम क्या है?

अंधी ने अपना नाम बताया, मुनीमजी ने नकदी गिनकर उसके नाम से जमा कर ली और वह सेठजी को आशीर्वाद देती हुई अपनी झोंपड़ी में चली गई।

(3)

दो वर्ष बहुत सुख के साथ बीते। इसके पश्चात् एक दिन लड़के को ज़्वर ने आ दबाया। अंधी ने दवा-दारू की, झाड़-फूंक से भी काम लिया, टोने-टोटके की परीक्षा की, परन्तु सम्पूर्ण प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। लड़के की दशा दिन-प्रतिदिन बुरी होती गई, अंधी का हृदय टूट गया, साहस ने जवाब दे दिया, निराश हो गई। परन्तु फिर ध्यान आया कि संभवतः डॉक्टर के इलाज से फायदा हो जाए। इस विचार के आते ही वह गिरती-पड़ती सेठजी की कोठी पर आ पहुँची। सेठजी उपस्थित थे।

अंधी ने कहा– सेठजी मेरी जमा-पूंजी में से दस-पाँच रुपए मुझे मिल जायें तो बड़ी कृपा हो। मेरा बच्चा मर रहा है, डॉक्टर को दिखाऊंगी।

सेठजी ने कठोर स्वर में कहा– कैसी जमा पूंजी? कैसे रुपए? मेरे पास किसी के रुपए जमा नहीं हैं।

अंधी ने रोते हुए उत्तर दिया– दो वर्ष हुए मैं आपके पास धरोहर रख गई थी। दे दीजिए बड़ी दया होगी।

सेठजी ने मुनीम की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखते हुए कहा– मुनीमजी, ज़रा देखना तो, इसके नाम की कोई पूंजी जमा है क्या? तेरा नाम क्या है री?

अंधी की जान-में-जान आई, आशा बंधी। पहला उत्तर सुनकर उसने सोचा कि सेठ बेईमान है, किन्तु अब सोचने लगी सम्भवतः उसे ध्यान न

रहा होगा। ऐसा धर्मी व्यक्ति भी भला कहीं झूठ बोल सकता है। उसने अपना नाम बता दिया। उलट-पलटकर देखा। फिर कहा– नहीं तो, इस नाम पर एक पाई भी जमा नहीं है।

अंधी वहीं जमी बैठी रही। उसने रो-रोकर कहा– सेठजी, परमात्मा के नाम पर, धर्म के नाम पर, कुछ दे दीजिए। मेरा बच्चा जी जाएगा। मैं जीवन-भर आपके गुण गाऊंगी।

परन्तु पत्थर में जोंक न लगी। सेठजी ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया– जाती है या नौकर को बुलाऊँ।

अंधी लाठी टेककर खड़ी हो गई और सेठजी की ओर मुंह करके बोली– अच्छा भगवान तुम्हें बहुत दे। और अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

यह अशीष न था बल्कि एक दुखी का शाप था। बच्चे की दशा बिगड़ती गई, दवा-दारू हुई ही नहीं, फायदा क्यों कर होता। एक दिन उसकी अवस्था चिन्ताजनक हो गई, प्राणों के लाले पड़ गये, उसके जीवन से अंधी भी निराश हो गई। सेठजी पर रह-रहकर उसे क्रोध आता था। इतना धनी व्यक्ति है, दो-चार रुपए दे देता तो क्या चला जाता और फिर मैं उससे कुछ दान नहीं मांग रही थी, अपने ही रुपए मांगने गई थी। सेठजी से घृणा हो गई।

बैठे-बैठे उसको कुछ ध्यान आया। उसने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और ठोकरें खाती, गिरती-पड़ती, सेठजी के पास पहुँची और उनके द्वार पर धरना देकर बैठ गई। बच्चे का शरीर ज्वर से भभक रहा था और अंधी का कलेजा भी।

एक नौकर किसी काम से बाहर आया। अंधी को बैठा देखकर उसने सेठजी को सूचना दी, सेठजी ने आज्ञा दी कि उसे भगा दो।

नौकर ने अंधी से चले जाने को कहा, किन्तु वह उस स्थान से न हिली। मारने का भय दिखाया, पर वह टस-से-मस न हुई। उसने फिर अन्दर जाकर कहा कि वह नहीं टलती।

सेठजी स्वयं बाहर पधारे। देखते ही पहचान गये। बच्चे को देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि उसकी शक्ल-सूरत उनके मोहन से बहुत

मिलती-जुलती है। सात वर्ष हुए तब मोहन किसी मेले में खो गया था। उसकी बहुत खोज की, पर उसका कोई पता न मिला। उन्हें स्मरण हो आया कि मोहन की जांघ पर एक लाल रंग का चिन्ह था। इस विचार के आते ही उन्होंने अंधी की गोद के बच्चे की जांघ देखी। चिन्ह अवश्य था परन्तु पहले से कुछ बड़ा। उनको विश्वास हो गया कि बच्चा उन्हीं का है। तुरन्त उसको छीनकर अपने कलेजे से चिपटा लिया। शरीर ज्वर से तप रहा था। नौकर को डॉक्टर लाने के लिए भेजा और स्वयं मकान के अन्दर चल दिये।

अंधी खड़ी हो गई और चिल्लाने लगी- मेरे बच्चे को न ले जाओ, मेरे रुपए तो हजम कर गये अब क्या मेरा बच्चा भी मुझसे छीनोगे?

सेठजी बहुत चिन्तित हुए और कहा- बच्चा मेरा है, यही एक बच्चा है, सात वर्ष पूर्व कहीं खो गया था अब मिला है, सो इसे कहीं नहीं जाने दूंगा और लाख यत्न करके भी इसके प्राण बचाऊंगा।

अंधी ने एक ज़ोर का ठहाका लगाया- तुम्हारा बच्चा है, इसलिए लाख यत्न करके भी उसे बचाओगे। मेरा बच्चा होता तो उसे मर जाने देते, क्यों? यह भी कोई न्याय है? इतने दिनों तक खून-पसीना एक करके उसको पाला है। मैं उसको अपने हाथ से नहीं जाने दूंगी।

सेठजी की अजीब दशा थी। कुछ करते-धरते बन नहीं पड़ता था। कुछ देर वहीं मौन खड़े रहे फिर मकान के अन्दर चले गये। अंधी कुछ समय तक खड़ी रोती रही फिर वह भी अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

(4)

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु की कृपा हुई या दवा ने जादू का-सा प्रभाव दिखाया। मोहन का ज्वर उतर गया। होश आने पर उसने आँख खोली तो सर्वप्रथम शब्द उसकी जबान से निकला, माँ।

चहुंओर अपरिचित शक्लें देखकर उसने अपने नेत्र फिर बन्द कर लिये। उस समय से उसका ज्वर फिर अधिक होना आरम्भ हो गया। माँ-माँ की रट लगी हुई थी, डॉक्टरों ने जवाब दे दिया, सेठजी के हाथ-पांव फूल गये, चहुंओर अंधेरा दिखाई पड़ने लगा।

क्या करूँ एक ही बच्चा है, इतने दिनों बाद मिला भी तो मृत्यु उसको अपने चंगुल में दबा रही है, इसे कैसे बचाऊँ?

सहसा उनको अंधी का ध्यान आया। पत्नी को बाहर भेजा कि देखो कहीं वह अब तक द्वार पर न बैठी हो। परन्तु वह वहाँ कहाँ? सेठजी ने फिटन तैयार कराई और बस्ती से बाहर उसकी झोंपड़ी पर पहुँचे। झोंपड़ी बिना द्वार के थी, अन्दर गए। देखा अंधी एक फटे-पुराने टाट पर पड़ी है और उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। सेठजी ने धीरे से उसको हिलाया। उसका शरीर भी अग्नि की भांति तप रहा था।

सेठजी ने कहा– बुढ़िया! तेरा बच्चा मर रहा है, डॉक्टर निराश हो गए, रह-रहकर वह तुझे पुकारता है। अब तू ही उसके प्राण बचा सकती है। चल और मेरे... नहीं-नहीं अपने बच्चे की जान बचा ले।

अंधी ने उत्तर दिया– मरता है तो मरने दो, मैं भी मर रही हूँ। हम दोनों स्वर्ग-लोक में फिर माँ-बेटे की तरह मिल जाएंगे। इस लोक में सुख नहीं है, वहाँ मेरा बच्चा सुख में रहेगा। मैं वहाँ उसकी सुचारू रूप से सेवा-सुश्रूषा करूंगी।

सेठजी रो दिये। आज तक उन्होंने किसी के सामने सिर न झुकाया था। किन्तु इस समय अंधी के पांवों पर गिर पड़े और रो-रोकर कहा– ममता की लाज रख लो, आखिर तुम भी उसकी माँ हो। चलो, तुम्हारे जाने से वह बच जायेगा।

ममता शब्द ने अंधी को विकल कर दिया। उसने तुरन्त कहा– अच्छा चलो।

सेठजी सहारा देकर उसे बाहर लाये और फिटन पर बिठा दिया। फिटन घर की ओर दौड़ने लगी। उस समय सेठजी और अंधी भिखारिन दोनों की एक ही दशा थी। दोनों की यही इच्छा थी कि शीघ्र-से-शीघ्र अपने बच्चे के पास पहुँच जायें।

कोठी आ गई, सेठजी ने सहारा देकर अंधी को उतारा और अन्दर ले गए। भीतर जाकर अंधी ने मोहन के माथे पर हाथ फेरा। मोहन पहचान गया कि यह उसकी माँ का हाथ है। उसने तुरन्त नेत्र खोल दिये और उसे अपने समीप खड़े हुए देखकर कहा– माँ, तुम आ गई।

अंधी भिखारिन मोहन के सिरहाने बैठ गई और उसने मोहन का सिर अपने गोद में रख लिया। उसको बहुत सुख अनुभव हुआ और वह उसकी गोद में तुरन्त सो गया।

दूसरे दिन से मोहन की दशा अच्छी होने लगी और दस-पन्द्रह दिन में वह बिलकुल स्वस्थ हो गया। जो काम हकीमों के जोशान्दे, वैद्यों की पुड़िया और डॉक्टरों के मिक्सचर न कर सके वह अंधी की स्नेहमयी सेवा ने पूरा कर दिया।

मोहन के पूरी तरह स्वस्थ हो जाने पर अंधी ने विदा मांगी। सेठजी ने बहुत-कुछ कहा-सुना कि वह उन्हीं के पास रह जाए परन्तु वह सहमत न हुई, विवश होकर विदा करना पड़ा। जब वह चलने लगी तो सेठजी ने रुपयों की एक थैली उसके हाथ में दे दी। अंधी ने मालूम किया, इसमें क्या है।

सेठजी ने कहा- इसमें तुम्हारी धरोहर है, तुम्हारे रुपए। मेरा वह अपराध...

अंधी ने बात काटकर कहा- यह रुपए तो मैंने तुम्हारे मोहन के लिए संग्रह किये थे, उसी को दे देना।

अंधी ने थैली वहीं छोड़ दी। और लाठी टेकती हुई चल दी। बाहर निकलकर फिर उसने उस घर की ओर नेत्र उठाये उसके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे किन्तु वह एक भिखारिन होते हुए भी सेठ से महान थी। इस समय सेठ याचक था और वह दाता थी।

पिंजर

रवीन्द्रनाथ टैगोर

(1)

जब मैं पढ़ाई की पुस्तकें समाप्त कर चुका तो मेरे पिता ने मुझे वैद्यक सिखानी चाही और इस काम के लिए एक जगत के अनुभवी गुरु को नियुक्त कर दिया। मेरा नवीन गुरु केवल देशी वैद्यक में ही चतुर न था, बल्कि डॉक्टरी भी जानता था। उसने मनुष्य के शरीर की बनावट समझाने के आशय से मेरे लिए एक मनुष्य का ढांचा अर्थात् हड्डियों का पिंजर मंगवा दिया था। जो उस कमरे में रखा गया, जहाँ मैं पढ़ता था। साधारण व्यक्ति जानते हैं कि मुर्दा विशेषतः हड्डियों के पिंजर से, कम आयु वाले बच्चों को, जब वे अकेले हों, कितना अधिक भय लगता है। स्वभावतः मुझको भी डर लगता था और आरम्भ में मैं कभी उस कमरे में अकेला न जाता था। यदि कभी किसी आवश्यकतावश जाना भी पड़ता तो उसकी ओर आँख उठाकर न देखता था। एक और विद्यार्थी भी मेरा सहपाठी था। जो बहुत निर्भय था। वह कभी उस पिंजर से भयभीत न होता था और कहा करता था कि इस पिंजर की सामर्थ्य ही क्या है? जिससे किसी जीवित व्यक्ति को हानि पहुँच सके। अभी हड्डियां हैं, कुछ दिनों पश्चात् मिट्टी हो जायेंगी। किन्तु मैं इस विषय में उससे कभी सहमत न हुआ और सर्वदा यही कहता रहा कि यह मैंने माना कि आत्मा इन हड्डियों से विलग हो गयी है, तब भी जब तक यह विद्यमान है वह समय-असमय आकर अपने पुराने मकान को देख जाया करती है। मेरा यह विचार प्रकट में अनोखा या असम्भव प्रतीत होता था और कभी किसी ने यह नहीं देखा होगा कि आत्मा फिर अपनी हड्डियों में वापस आयी हो। किन्तु यह एक अमर घटना है कि मेरा विचार सत्य था और सत्य निकला।

(2)

कुछ दिनों पहले की घटना है कि एक रात को गार्हस्थ आवश्यकताओं के कारण मुझे उस कमरे में सोना पड़ा। मेरे लिए यह नई बात थी। अतः नींद न आई और मैं काफी समय तक करवटें बदलता रहा यहाँ तक कि समीप के गिरजाघर ने बारह बजाये। जो लैम्प मेरे कमरे में प्रकाश दे रहा था, वह मद्धम होकर धीरे-धीरे बुझ गया। उस समय मुझे उस प्रकाश के सम्बन्ध में विचार आया कि क्षण-भर पहले वह विद्यमान था किन्तु अब सर्वदा के लिए अंधेरे में परिवर्तित हो गया। संसार में मनुष्य-जीवन की भी यही दशा है। जो कभी दिन और कभी रात के अनन्त में जा मिलता है।

धीरे-धीरे मेरे विचार पिंजर की ओर परिवर्तित होने आरम्भ हुए। मैं हृदय में सोच रहा था कि भगवान जाने ये हड्डियां अपने जीवन में क्या कुछ न होंगी। सहसा मुझे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कोई अनोखी वस्तु मेरे पलंग के चारों ओर अन्धेरे में फिर रही है। फिर लम्बी साँसों की ध्वनि, जैसे कोई दुखित व्यक्ति साँस लेता है, मेरे कानों में आई और पांवों की आहट भी सुनाई दी। मैंने सोचा यह मेरा भ्रम है, और बुरे स्वप्नों के कारण काल्पनिक आवाजें आ रही हैं, किन्तु पांव की आहट फिर सुनाई दी। इस पर मैंने भ्रम-निवारण हेतु उच्च स्वर से पूछा– "कौन है?" यह सुनकर वह अपरिचित शक्ल मेरे समीप आई और बोली– "मैं हूँ, मैं अपने पिंजर को देखने आई हूँ।"

मैंने विचार किया मेरा कोई परिचित मुझसे हँसी कर रहा है। इसलिए मैंने कहा– "यह कौन-सा समय पिंजर देखने का है। वास्तव में तुम्हारा अभिप्राय क्या है?"

ध्वनि आई– "मुझे असमय से क्या अभिप्राय? मेरी वस्तु है, मैं जिस समय चाहूँ इसे देख सकती हूँ। आह! क्या तुम नहीं देखते वे मेरी पसलियां हैं, जिनमें वर्षों मेरा हृदय रहा है। मैं पूरे छब्बीस वर्ष इस घोंसले में बन्द रही, जिसको अब तुम पिंजर कहते हो। यदि मैं अपने पुराने घर को देखने चली आई तो इसमें तुम्हें क्या बाधा हुई?"

मैं डर गया और आत्मा को टालने के लिए कहा– "अच्छा, तुम जाकर अपना पिंजर देख लो, मुझे नींद आती है। मैं सोता हूँ।" मैंने हृदय में निश्चय कर लिया कि जिस समय वह यहाँ से हटे, मैं तुरन्त भागकर बाहर चला जाऊंगा। किन्तु वह टलने वाली आसामी न थी, कहने लगी– "क्या तुम यहाँ अकेले सोते हो? अच्छा आओ कुछ बातें करें।"

उसका आग्रह मेरे लिए व्यर्थ की विपत्ति से कम न था। मृत्यु की रूपरेखा मेरी आँखों के सामने फिरने लगी। किन्तु विवशता से उत्तर दिया– "अच्छा तो बैठ जाओ और कोई मनोरंजक बात सुनाओ।"

आवाज आई– "लो सुनो। पच्चीस वर्ष बीते मैं भी तुम्हारी तरह मनुष्य थी और मनुष्यों में बैठकर बातचीत किया करती थी। किन्तु अब श्मशान के शून्य स्थान में फिरती रहती हूँ। आज मेरी इच्छा है कि मैं फिर एक लम्बे समय के पश्चात् मनुष्यों से बातें करूं। मैं प्रसन्न हूँ कि तुमने मेरी बातें सुनने पर सहमति प्रकट की है। क्यों? तुम बातें सुनना चाहते हो या नहीं।"

यह कहकर वह आगे की ओर आई और मुझे मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति मेरे पांयती पर बैठ गया है। फिर इससे पूर्व कि मैं कोई शब्द मुख से निकालूं, उसने अपनी कथा सुनानी आरम्भ कर दी।

(3)

वह बोली– "महाशय, जब मैं मनुष्य के रूप में थी तो केवल एक व्यक्ति से डरती थी और वह व्यक्ति मेरे लिए मानो मृत्यु का देवता था। वह था मेरा पति। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मछली को कांटा लगाकर पानी से बाहर ले आया हो। वह व्यक्ति मुझको मेरे माता-पिता के घर से बाहर ले आया था और मुझको वहाँ जाने न देता था। अच्छा था उसका काम जल्दी ही समाप्त हो गया अर्थात् विवाह के दूसरे महीने ही वह संसार से चल बसा। मैंने लोगों की देखा-देखी वैष्णव रीति से क्रियाकर्म किया, किन्तु हृदय में बहुत प्रसन्न थी कि कांटा निकल गया। अब मुझको अपने माता-पिता से मिलने की आज्ञा मिल जाएगी और मैं अपनी पुरानी सहेलियों से, जिनके

साथ खेला करती थी, मिलूंगी। किन्तु अभी मुझको मैके जाने की आज्ञा न मिली थी, कि मेरा ससुर घर आया और मेरा मुख ध्यान से देखकर अपने-आप कहने लगा– "मुझको इसके हाथ और पांव के चिन्ह देखने से मालूम होता है यह लड़की डायन है।" अपने ससुर के वे शब्द मुझको अब तक याद हैं। वे मेरे कानों में गूँज रहे हैं। उसके कुछ दिनों पश्चात् मुझे अपने पिता के यहाँ जाने की आज्ञा मिल गई। पिता के घर जाने पर मुझे जो खुशी प्राप्त हुई वह वर्णन नहीं की जा सकती। मैं वहाँ प्रसन्नता से अपने यौवन के दिन व्यतीत करने लगी। मैंने उन दिनों अनेकों बार अपने विषय में कहते सुना कि मैं सुन्दर युवती हूँ, परन्तु तुम कहो तुम्हारी क्या सम्मति है?

मैंने उत्तर दिया– "मैंने तुम्हें जीवित देखा नहीं, मैं कैसे सम्मति दे सकता हूँ, जो कुछ तुमने कहा ठीक होगा।"

वह बोली– "मैं कैसे विश्वास दिलाऊं कि इन दो गढ़ों में लज्जाशील दो नेत्र, देखने वालों पर बिजलियां गिराते थे। खेद है कि तुम मेरी वास्तविक मुस्कान का अनुमान इन हड्डियों के खुले मुखड़े से नहीं लगा सकते। इन हड्डियों के चहुंओर जो सौन्दर्य था अब उसका नाम तक बाकी नहीं है। मेरे जीवन के क्षणों में कोई योग्य-से-योग्य डॉक्टर भी कल्पना न कर सकता था कि मेरी हड्डियां मानव-शरीर की रूप-रेखा के वर्णन के काम आयेंगी। मुझे वह दिन याद है जब मैं चला करती थी तो प्रकाश की किरणें मेरे एक-एक बाल से निकलकर प्रत्येक दिशा को प्रकाशित करती थीं। मैं अपनी बांहों को घण्टों देखा करती थी। आह- ये वे बांहें थीं, जिसको मैंने दिखाई अपनी ओर आसक्त कर लिया। सम्भवतः सुभद्रा को भी ऐसी बांहें नसीब न हुई होंगी। मेरी कोमल और पतली उंगलियां मृणाल को भी लजाती थीं। खेद है कि मेरे इस नग्न-ढांचे ने तुम्हें मेरे सौन्दर्य के विषय में सर्वथा झूठी सम्मति निर्धारित करने का अवसर दिया। तुम मुझे यौवन के क्षणों में देखते तो आँखों से नींद उड़ जाती और वैद्यक ज्ञान का सौदा मस्तिष्क से अशुद्ध शब्द की भांति समाप्त हो जाता।

उसने कहानी का तारतम्य प्रवाहित रखकर कहा– "मेरे भाई ने निश्चय कर लिया था कि वह विवाह न करेगा और घर में मैं ही एक स्त्री थी। मैं संध्या-समय अपने उद्यान में छाया वाले वृक्षों के नीचे बैठती तो सितारे

मुझे घूरा करते और शीतल वायु जब मेरे समीप से गुजरती तो मेरे साथ अठखेलियां करती थी। मैं अपने सौन्दर्य पर घमण्ड करती और अनेकों बार सोचा करती थी कि जिस धरती पर मेरा पांव पड़ता है यदि उसमें अनुभव करने की शक्ति होती तो प्रसन्नता से फूली न समाती। कभी कहती संसार के सम्पूर्ण प्रेमी युवक घास के रूप में मेरे पैरों पर पड़े हैं। अब ये सम्पूर्ण विचार मुझको अनेक बार विफल करते हैं कि आह! क्या था और क्या हो गया।

"मेरे भाई का एक मित्र सतीशकुमार था जिसने मेडिकल कॉलेज में डॉक्टरी का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया था। वह हमारा भी घरेलू डॉक्टर था। वैसे उसने मुझको नहीं देखा था परन्तु मैंने उसको एक दिन देख ही लिया और मुझे यह कहने में भी संकोच नहीं कि उसकी सुन्दरता ने मुझ पर विशेष प्रभाव डाला। मेरा भाई अजीब ढंग का व्यक्ति था। संसार के शीत-ग्रीष्म से सर्वथा अपरिचित वह कभी गृहस्थ के कामों में हस्तक्षेप न करता। वह मौनप्रिय और एकान्त में रहा करता था जिसका परिणाम यह हुआ कि संसार से अलग होकर एकान्तप्रिय बन गया और साधु-महात्माओं का-सा जीवन बिताने लगा।

"हाँ, तो वह नवयुवक सतीशकुमार हमारे यहाँ प्रायः आता और यही एक नवयुवक था जिसको अपने घर के पुरुषों के अतिरिक्त मुझे देखने का संयोग प्राप्त हुआ था। जब मैं उद्यान में अकेली होती और पुष्पों से लदे हुए वृक्ष के नीचे महारानी की भांति बैठती, तो सतीशकुमार का ध्यान और भी मेरे हृदय में चुटकियां लेता- परन्तु तुम किस चिन्ता में हो। तुम्हारे हृदय में क्या बीत रही है?"

मैंने ठंडी साँस भरकर उत्तर दिया- "मैं यह विचार कर रहा हूँ कि कितना अच्छा होता कि मैं ही सतीशकुमार होता।"

वह हँसकर बोली- "अच्छा, पहले मेरी कहानी सुन लो फिर प्रेमालाप कर लेना। एक दिन वर्षा हो रही थी, मुझे कुछ बुखार था उस समय डॉक्टर अर्थात् मेरा प्रिय सतीश मुझे देखने के लिए आया। यह प्रथम अवसर था कि हम दोनों ने एक-दूसरे को आमने-सामने देखा और देखते ही डॉक्टर मूर्ति-समान स्थिर-सा हो गया और मेरे भाई की मौजूदगी ने होश संभालने

के लिए बाध्य कर दिया। वह मेरी ओर संकेत करके बोला– 'मैं इनकी नब्ज देखना चाहता हूँ।' मैंने धीरे-से अपना हाथ दुशाले से निकाला। डॉक्टर ने मेरी नब्ज पर हाथ रखा। मैंने कभी न देखा कि किसी डॉक्टर ने साधारण ज्वर के निरीक्षण में इतना विचार किया हो। उसके हाथ की उंगलियां कांप रही थीं। कठिन परिश्रम के पश्चात् उसने मेरे ज्वर को अनुभव किया; किन्तु वह मेरा ज्वर देखते-देखते स्वयं ही बीमार हो गये। क्यों, तुम इस बात को मानते हो या नहीं।"

मैंने डरते-डरते कहा– "हाँ, बिल्कुल मानता हूँ। मनुष्य की अवस्था में परिवर्तन उत्पन्न होना कठिन नहीं है।"

वह बोली– "कुछ दिनों परीक्षण करने से ज्ञात हुआ कि मेरे हृदय में डॉक्टर के अतिरिक्त और किसी नवयुवक का विचार तक नहीं। मेरा कार्यक्रम था सन्ध्या-समय वसन्ती रंग की साड़ी पहनकर बालों में कंघी, फूलों का हार गले में डालकर, दर्पण हाथ में लिये बाग में चले जाना और पहरों देखा करना। क्यों, क्या दर्पण देखना बुरा है?"

मैंन घबराकर उत्तर दिया– "नहीं तो।"

उसने कहानी का सिलसिला स्थापित रखते हुए कहा– "दर्पण देखकर मैं ऐसा अनुभव करती जैसे मेरे दो रूप हो गये हैं। अर्थात् मैं स्वयं ही सतीशकुमार बन जाती और स्वयं ही अपने प्रतिबिम्ब को प्रेमिका समझकर उस पर तन-मन न्यौछावर करती। यह मेरा बहुत ही प्रिय मनोरंजन था और मैं घण्टों व्यतीत कर देती। अनेकों बार ऐसा हुआ कि मध्याह्न को पलंग पर बिस्तर बिछाकर लेटी और एक हाथ को बिस्तर पर उपेक्षा से फेंक दिया। जरा आँख झपकी तो सपने में देखा कि सतीशकुमार आया और मेरे हाथ को चूमकर चला गया... बस, अब मैं कहानी समाप्त करती हूँ, तुम्हें तो नींद आ रही है।"

मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ चुकी थी। अतः मैंने नम्रता भरे स्वर में कहा– "नहीं, तुम कहे जाओ, मेरी जिज्ञासा बढ़ती जाती है।"

वह कहने लगी– "अच्छा सुनो! थोड़े दिनों में ही सतीशकुमार का कारोबार बहुत बढ़ गया और उसने हमारे मकान के नीचे के भाग में अपनी

डिस्पेन्सरी खोल ली। जब उसे रोगियों से अवकाश मिलता तो मैं उसके पास जा बैठती और हँसी-ठट्ठों में विभिन्न दवाई का नाम पूछती रहती। इस प्रकार मुझे ऐसी दवाएं भी ज्ञात हो गई, जो विषैली थीं। सतीशकुमार से जो कुछ मैं मालूम करती वह बड़े प्रेम और नम्रता से बताया करता। इस प्रकार एक लम्बा समय बीत गया और मैंने अनुभव करना आरम्भ किया कि डॉक्टर होश-हवाश खोये-से रहता है और जब कभी मैं उसके सम्मुख जाती हूँ तो उसके मुख पर मुर्दनी-सी छा जाती है। परन्तु ऐसा क्यों होता है? इसका कोई कारण ज्ञात न हुआ। एक दिन डॉक्टर ने मेरे भाई से गाड़ी मांगी। मैं पास बैठी थी। मैंने भाई से पूछा– "डॉक्टर रात में इस समय कहाँ जायेगा?" मेरे भाई ने उत्तर दिया– "तबाह होने को।" मैंने अनुरोध किया कि मुझे अवश्य बताओ वह कहाँ जा रहा है?

भाई ने कहा– "वह विवाह करने जा रहा है।"

यह सुनकर मुझ पर मूर्छा-सी छा गई। किन्तु मैंने अपने-आपको संभाला और भाई से फिर पूछा– "क्या वह सचमुच विवाह करने जा रहा है या मजाक करते हो?"

उसने उत्तर दिया– "सत्य ही आज डॉक्टर दुल्हन लायेगा!"

"मैं वर्णन नहीं कर सकती कि यह बात मुझे कितनी कष्टप्रद अनुभव हुई। मैंने अपने हृदय से बार-बार पूछा कि डॉक्टर ने मुझसे यह बात क्यों छिपाकर रखी। क्या मैं उसको रोकती कि विवाह मत करो? इन पुरुषों की बात का कोई विश्वास नहीं।"

"मध्याह्न डॉक्टर रोगियों को देखकर डिस्पेन्सरी में आया और मैंने पूछा– 'डॉक्टर साहब! क्या यह सत्य है कि आज आपका विवाह है।' यह कहकर मैं बहुत हँसी और डॉक्टर यह देखकर कि मैं इस बात को हँसी में उड़ा रही हूँ, न केवल लज्जित हुआ; बल्कि कुछ चिन्तित-सा हो गया। फिर मैंने सहसा पूछा– 'डॉक्टर साहब, जब आपका विवाह हो जायेगा तो क्या आप फिर भी लोगों की नब्ज देखा करेंगे। आप तो डॉक्टर हैं और अन्य डॉक्टरों की अपेक्षा प्रसिद्ध भी हैं। आप शरीर के सम्पूर्ण अंगों की दशा भी जानते हैं; किन्तु खेद है कि आप डॉक्टर होकर किसी के हृदय

का पता नहीं लगा सकते कि वह किस दशा में है। वस्तुतः हृदय भी शरीर का भाग है।'"

मेरे शब्द डॉक्टर के हृदय में तीर की भांति लगे; परंतु वह मौन रहा।

(4)

लगन का मुहूर्त बहुत रात गए निश्चित हुआ था और बारात देर से जानी थी। अतः डॉक्टर और मेरा भाई प्रतिदिन की भांति शराब पीने बैठ गये। इस मनोविनोद में उनको बहुत देर हो गई।

ग्यारह बजने को थे कि मैं उनके पास गई और कहा– "डॉक्टर साहब! ग्यारह बजने वाले हैं आपको विवाह के लिए तैयार होना चाहिए।" वह किसी सीमा तक चेतन हो गया था, बोला– "अभी जाता हूँ।" फिर वह मेरे भाई के साथ बातों में तल्लीन हो गया और मैंने अवसर पाकर विष की पुड़िया, जो मैंने दोपहर को डॉक्टर की अनुपस्थिति में उसकी अलमारी से निकाली थी शराब के गिलास में, जो डॉक्टर के सामने रखा हुआ था डाल दी। कुछ क्षणों के पश्चात् डॉक्टर ने अपना गिलास खाली किया और दूल्हा बनने को चला गया। मेरा भाई भी उसके साथ चला गया।"

"मैं अपने दो मंजिले कमरे में गई और अपना नया बनारसी दुपट्टा ओढ़ा, मांग में सिंदूर भर पूरी सुहागन बनकर उद्यान में निकली जहाँ प्रतिदिन संध्या-समय बैठा करती थी। उस समय चांदनी छिटकी हुई थी, वायु में कुछ सिहरन उत्पन्न हो गई थी और चमेली की सुगन्ध ने उद्यान को महका दिया था। मैंने पुड़िया की शेष दवा निकाली और मुंह में डालकर एक चुल्लू पानी पी लिया। थोड़ी देर में मेरे सिर में चक्कर आने लगे, आँखों में धुंधलापन छा गया। चांद का प्रकाश मद्धिम होने लगा और पृथ्वी तथा आकाश, बेल-बूटे, अब मेरा घर जहाँ मैंने आयु बिताई थी, धीरे-धीरे लुप्त होते हुए ज्ञात हुए और मैं मीठी नींद सो गई।"

"डेढ़ साल के पश्चात् सुख-स्वप्न से चौंकी तो मैंने क्या देखा कि तीन विद्यार्थी मेरी हड्डियों से डॉक्टरी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और एक अध्यापक

मेरी छाती की ओर बेंत से संकेत करके लड़कों को विभिन्न हड्डियों के नाम बता रहा है और कहता है– 'यहाँ हृदय रहता है, जो विवाह और दुःख के समय धड़का करता है और यह वह स्थान है जहाँ उठती जवानी के समय फूल निकलते हैं।' अच्छा अब मेरी कहानी समाप्त होती है। मैं विदा होती हूँ, तुम सो जाओ।"

'प्रसिद्ध साहित्यकारों की अनमोल कहानियाँ' का यह संग्रह प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे भारतीय सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से चयनित कहानियों से तैयार किया गया है। जिसे पढ़कर समस्त पाठकगण मनुष्य की विभिन्न परिस्थितियों की अनुभूति कर सकते है।

ये समस्त लेखकगण अपनी-अपनी रचनाओं द्वारा समाज में विशेष रूप में विख्यात हैं। इनके लेखन आगामी पीढ़ी पर गहराई तक प्रभाव छोड़ती है। जहाँ प्रेमचंद एवं जयशंकर प्रसाद की कहानियों द्वारा समाज के अभिन्न रूप का वर्णन होता है जो की प्रतीकात्मक, भावात्मक एवं आदर्शों से परिपूर्ण हैं वहीं रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की रचनाएँ बांग्ला भाषा की प्रस्तुति द्वारा अत्यंत लोकप्रिय हैं। इनकी रचनाएँ अन्य भाषाओं में भी प्रस्तुत हैं।